ब्रह्म सत्यं जगत् सत्यं अंशो जीवो हि नापरः

अखण्ड भूमण्डलाचार्य जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठ, श्रीनाथद्वारा

पुष्टिमार्ग

त्रैमासिक पत्रिका

जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठाधीश्वर
आचार्यवर्य्य गोस्वामी तिलकायित
श्री १०८ श्रीराकेशजी (श्रीइन्द्रदमनजी)
महाराजश्री की आज्ञा से–

प्रकाशक

अजय कुमार शुक्ला

मुख्य निष्पादन अधिकारी

मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा (राज.)

31 मार्च 10
(वि.सं. २०६७)

दयाशंकर पालीवाल
सम्पादक

*जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठाधीश्वर आचार्यवर्य्य गोस्वामी तिलकायित श्री १०८ श्रीराकेशजी (श्रीइन्द्रदमनजी) महाराजश्री की आज्ञा से सम्पादक दयाशंकर पालीवाल द्वारा सम्पादित एवं स्वत्वाधिकारी श्रीमन्दिर मण्डल, नाथद्वारा के मुख्य निष्पादन अधिकारी द्वारा प्रकाशित तथा **श्रीसुदर्शन यन्त्रालय** मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा द्वारा मुद्रित।*

संरक्षक–मण्डल

अध्यक्ष

गो. ति. श्री १०८ श्रीराकेशजी (श्रीइन्द्रदमनजी) महाराजश्री

चि. गो. श्रीभूपेशकुमारजी (श्रीविशाल बावा)

प्रकाशकः–

अजय कुमार शुक्ला

मुख्य निष्पादन अधिकारी मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा

दयाशंकर पालीवाल

सम्पादक

जयदेव गुर्जर गौड़
परामर्शदाता

डा. देवर्षि कलानाथ शास्त्री
परामर्शदाता

न्यौछावर १५/– *अंक– 1* *प्रति १०००*

नाथद्वारा मन्दिर मण्डल के मुख्य निष्पादन अधिकारी नाथद्वारा द्वारा प्रकाशित एवं श्रीसुदर्शन यन्त्रालय मन्दिर मण्डल द्वारा मुद्रित

R.N.I.No. RAJHIN-/1999-3432

प्राप्ति स्थान
श्रीगोवर्धन पुस्तकालय, धोली पटिया श्रीनाथजी मन्दिर
नाथद्वारा (राजस्थान) 313301

कृपया सदस्यता शुल्क वार्षिक–60), पांच वर्षिय–300) और आजीवन–800) भिजाकर शीघ्र सदस्य बनें और अन्य लोगों को भी बनाने का पवित्र कार्य करें।–सम्पादक
"जय श्रीकृष्ण"

सम्पादकीय–

पुष्टिमार्ग, सेवामार्ग है जिसमें भगवान् ही साध्य, भगवान् ही साधन और भगवान् ही फल माने गये हैं। इसी सेवा मार्ग की स्थापना करने के लिए एवं स्वाचरण द्वारा उसके क्रियात्मक स्वरूप का उपदेश देने के लिए ही साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम ही, सेव्य और सेवक इन दोनों रूप से प्रकट हुए।

श्रीनाथजी रूप में सेव्य तथा श्रीमद्आचार्य रूप में सेवक बने। अपनी ही सेवा अपने से करने के लिए सेव्य और सेवक दोनों स्वरूप से प्रकट हुए, मानो एक ही तेजः पुंज दो किरणों में विभक्त हो गया। इसी हेतु श्रीमद्आचार्य ने परब्रह्म रूप से अपने आपको कृष्ण का 'दास' भी कहा है– इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य'। इसी तरह भगवान श्रीकृष्ण परब्रह्म होते हुए भी अपने आपको भक्त पराधीन मानते हैं– 'अहं–भक्तपराधीनः। स्नेह की चरम स्थिति में यह सभी संभव है। वास्तव में यह सेव्य एवं सेवकत्व दोनों विरूद्ध धर्म परब्रह्म में ही संभवित कहे गए हैं। परब्रह्म विरूद्ध धर्मो का समाश्रय कहा गया है। अतः आचार्य श्री दास होते हुए भी भगवान् है और भगवान् भगवान् होते हुए भी दास–पराधीन है। सेव्य और सेवक के पारस्परिक धर्म की चरितार्थता में ही वल्लभ–कुल का अस्तित्व है। सेव्य और सेवक का धर्म ही सेवामार्ग है। सेवा मार्ग का उपदेश, उसका प्रचार प्रसार और उसका विस्तार ही वल्लभ कुल की कर्तव्यता है।

प्रस्तुत अंक में परम विदुषी एवं भगवदीय डॉ. सत्या के. शर्मा ने अपने विलक्षण वैदुष्य से ''पुष्टिमार्ग की व्यवहार्यता'' आलेख में पुष्टिमार्ग और शुद्धाद्वैत दर्शन पर सर्वांगीण अनुभूति का मार्मिक वर्णन करते हुए मूल उद्देश्य– 'जीव का अपने प्रकट स्वरूप में ही सच्चिदानन्दता प्राप्त करना'' का बोध कराया है। प्रकाण्ड विद्वान, गूढ़तत्व चिन्तक और पुष्टिमार्ग शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के मर्मज्ञ रहे देवर्षि श्रीरमानाथ शास्त्री ने अपने आलेख (उनके वंशज डा. रचना तैलंग द्वारा सुलभ कराये गए दुर्लभ आलेख) में पुष्टिमार्गीय प्रचार की दृष्टि से प्रमाण, प्रमेय, भावना, साधन इन चारों का अध्ययन आवश्यक बताया है। विद्वान डा. राकेश तैलंग का आलेख पुष्टिमार्गीय आचार्यो के सेवानुराग के सरस प्रसंगो से सिक्त है। परम विद्वान पूर्व निदेशक राजस्थान संस्कृत एकेडमी, श्रीगदाधर भट्ट ने अपने आलेख में विद्वतापूर्ण वर्णन के साथ भगवत्सेवा से विमुख न होने की सीख प्रदान की है। परम भगवदीय श्रीहरिनारायण नीमा ने रसमस्त

भक्त रसखान पर गुसाँईजी की अनहद कृपा से जिगर–जान–मेहबूब–श्रीनाथजी से मिल पाने का सरस वर्णन कर पाठकों को रस सिक्त कर दिया। परम विदुषी डा. रचना तैलंग ने राजस्थान के गणगौर त्यौहार के पुष्टिमार्गीय प्रभाव से राष्ट्रीय त्यौहार बन जाने का मनोहर वर्णन किया है। प्रो. श्रीललितशंकर शर्मा का आलेख प्रभु के पुष्टिवर्द्धन भक्त वत्सल और प्रभु की दिव्य लीलाओं का रस पान कराने वाले स्वरूप का दर्शन कराता है जबकि काव्य, प्रेम शक्ति–स्वरूपा राधिका का परमानन्द प्रदाता है। श्रीनाथजी मन्दिर नाथद्वारा के प्रधान उपाध्याय श्रीब्रजभूषण भट्ट ने अपने आलेख से क्रमशः अशौच सम्बन्धी मार्ग दर्शन देते रहने की सहमति प्रदान की है। सरल और त्यागी वैष्णव श्रीश्यामसुंदर गिरनारा ने वैष्णवों को पुष्टिभावों की दृढ़ता के लिए गीता के पाठ की ही नहीं अनुशीलन की भी सीख दी है। विधि, विज्ञान और पुष्टिमार्ग मर्मज्ञ श्रीगोपालदास नीमा ने ''पुष्टिमार्ग'' में संक्रांति उत्सव पर प्रकाश डाला है। शिक्षा और विज्ञान के मनीषी तथा पुष्टिभावों से ओतःप्रोत श्रीप्यारेलाल पारीख ने वार्ता–प्रसंगों से अन्याश्रय का स्वस्थ वर्णन किया है। मेवाड़–हारित–रिषी सम्मान प्राप्त पं. विष्णुदत्त द्वारा बहुला गाय की प्रतिमा के सजीव होकर घास खाने का चमत्कारी उल्लेख वैष्णवों को महाप्रभुजी व पुष्टिमार्ग के प्रति श्रद्धा भाव से आनन्दित करता है। सहज, सरल वैष्णव जयन्त गांधी ने 'महाप्रभुजी की अमर कहानी' के रूप में सरल किन्तु भावपूर्ण काव्य सृजन किया है। प्रख्यात चित्रकला मर्मज्ञ और सांस्कृतिक संवाददाता डा. गगन दाधीच ने फागोत्सव की अनूठी परम्परा, रसिया के रससिक्त भावों, शृंगारिकता और भावपूर्ण सेवा में प्रेम–समर्पण का सरस चित्रण प्रस्तुत किया है। श्रीगोवर्द्धनधरण प्रभु श्रीनाथजी का अनुग्रह, पूज्यपाद ति. गो. श्रीराकेशजी महाराजश्री की कृपा, चि. गो. श्रीविशाल बावा सा. का सम्यक मार्ग दर्शन, मुख्य निष्पादन अधिकारी महोदय की सदाशयता, परामर्शदाताओं का परामर्श और विद्वान लेखकों का लेखन मेरा सम्बल रहा है। पत्रिका का स्तर उत्तरोत्तर उत्तम बनता रहे और विद्वज्जन तथा पाठकों का सतत् सहयोग मिलता रहे, यही गोवर्द्धनधरण प्रभु श्रीनाथजी से प्रार्थना है।

दयाशंकर पालीवाल (पूर्व प्राचार्य, शुद्धाद्वैत भूषण)
संपादक

अनुक्रमणिका

विषय		प्रस्तोता	पृष्ठ सं.
*	सम्पादकीय	दयाशंकर पालीवाल	
1.	पुष्टिमार्ग की व्यावहार्यता	डा. सत्या के. शर्मा	6
2.	पुष्टि संप्रदाय की स्थिरता और उन्नति अब कैसे विद्यमान रहे	देवर्षि श्रीरमानाथ शास्त्री	15
3.	पुष्टिमार्गीय आचार्यो का सेवानुराग	डा. राकेश तैलंग	18
4.	आचार्य परम्परा और पुष्टिमार्ग	श्रीगदाधर भट्ट	20
5.	को कहि सके मिताई, श्रीनाथ साथ रसखान की..........	श्रीहरिनारायण नीमा	23
6.	पुष्टिमार्ग में गणगौर उत्सव	डा. रचना तैलंग	25
7.	प्रभु का वास्तविक स्वरूप	प्रो. श्रीललितशंकर शर्मा	27
8.	पुष्टिमार्ग के मन्दिरों में अशौच–विचार	उपाध्याय श्रीब्रजभूषण भट्ट	28
9.	पुष्टिमार्ग और गीता	श्री श्यामसुन्दर गिरनारा	31
10.	शक्ति–स्वरूप–निरूपण (काव्य)	प्रो. श्री ललितशंकर शर्मा	33
11.	पुष्टिमार्ग में संक्रांति उत्सव	श्री गोपालदास व. नीमा	34
12.	अन्याश्रय	श्री प्यारेलाल पारिख	36
13.	कृष्ण कुण्ड पर राधे राधे	पं. श्री विष्णुदत्त पुरोहित	38
14.	महाप्रभुजी की अमर कहानी (कविता)	श्री जयन्त गांधी	39
15.	आज बिरज में होली रे रसिया, ब्रज संस्कृति से उत्प्रेरित ठाकुरजी का होलिकोत्सव	डा. श्री गगन बिहारी दाधीच	41
16.	सदस्यता फार्म (हिन्दी)	मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा	43
17.	सदस्यता फार्म (अंग्रेजी)	मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा	44

पुष्टिमार्गीय विद्वज्जन से प्रामाणिक आलेख सादर आमन्त्रित है–

पुष्टिमार्ग की व्यावहार्यता

–डॉ. सत्या के. शर्मा

विश्व में वस्तुतः भारत को ही एक ऐसा देश कहा जा सकता है जहाँ अनेक दर्शनशास्त्रीय सिद्धान्तों की उद्भासना ही नहीं हुई अपितु उन सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में मानवीय व्यवहार धरातल को पूर्णतया आबद्ध करने की प्रणाली भी विकसित की गई। यह भी सर्वविदित है कि भारत की दार्शनिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि मूलतः आदर्श–केन्द्रित है लेकिन यह आत्मस्थ होते हुए भी बाह्य भौतिक परिवेश से कभी विलग नहीं रही– इस संस्कृति की मूल विशेषता ही यह है कि इसमें अन्तर्निहित चेतना–दृष्टि एकांगी कभी नहीं रही। सहस्त्राब्दियों पूर्व से ही भारतीय मनीषा ने ब्रह्माण्ड के रहस्यों को समझने तथा उनके साथ गहरे आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अनेक अभ्यर्थनाओं की उद्भावना ही नहीं की अपितु उन प्रार्थनाओं के अनुरूप अनेक क्रियात्मक उपक्रम भी निश्चित किए। ज्ञान–संग्रहण के साथ–साथ कार्य करते रहने का उत्तरदायित्व–बोध इसकी आन्तरिक शिराओं में निरन्तर प्रवाहित रहा। इसके अनुसार मनुष्य वस्तुतः दो धरातल पर जीवित रहता है (1) भौतिक– यह दृश्यमान शरीर रूपी स्तर है और जब तक यह स्तर जीवित है, उसे समस्त जागतिक कार्यों का विधिवत् निर्वाह करते रहना चाहिए (2) द्वितीय स्तर आत्मपरक है– इस स्तर पर सभी मानव ही नहीं, जगत् के सभी जीव चराचर प्राणी एक आत्मतत्त्व से युक्त है जो सभी प्राणियों में समानरूप से विद्यमान है अतः प्रत्येक मानव को इस आध्यात्मिक–जीवन जीने के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए, क्योंकि अध्यात्म में ही वह अनुशासन होता है जो एक मानव की अन्तरात्मा को स्पर्श कर उसे समस्त सांसारिक आपदाओं–समस्याओं से संघर्ष करने में सहायता करने के साथ–साथ उसे भावात्मक–मानसिक रूप से परिपक्व बनाने की क्षमता भी प्रदान करता है।

भारतीय इतिहास के किसी भी कालखण्ड में यह दर्शनशास्त्रीय आध्यात्मिक–चेतना कभी विलुप्त नहीं हुई–यहाँ तक कि दसवीं शताब्दी के पश्चात् से ही जिस समय भारत का उत्तरी क्षेत्र बाह्य दुर्दम आक्रमणकारियों के दमनचक्रों की निर्ममता से आक्रान्त था, दाक्षिण्य दार्शनिक–चिन्तक देश की चारों सीमाओं पर आध्यात्मिक ज्योति प्रज्वलित करने के लिए मठों की स्थापना कर रहे थे और दक्षिण के ही आलवार सन्तों–भक्तों के द्वारा सामान्य त्रस्त जनजीवन को आध्यात्मिक अनुभवों से आप्लावित किया जा रहा था– वैसे इस देश में भक्तिभावना वैदिक काल से ही किसी न किसी रूप में अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती रही है जिसका चरम विकास श्रीमद्भगवद्गीता में स्पष्टतः परिलक्षित होता है लेकिन गीता में ''ज्ञानकर्मयोगसमुच्चय'' के द्वारा जिस भक्ति–भाव को ''साधूनाम् परित्राणाय'' के रूप में निष्पादित किया गया– भक्ति की वह उदात्त

भावना कालान्तर में ''समुत्कंठितानां साधकानां प्रेमानन्द–विस्तारणम्'' के रूप में विकसित होकर राम और कृष्ण भक्ति धारा के कितने ही स्वरूप–सिद्धान्तों के अन्वेषण–अनुशीलन के लिए नियमिका सिद्ध हुई।

सौलहवीं शताब्दी के कृष्णभक्ति–आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्त्तक के रूप में प्रसिद्ध श्रीमद्वल्लभाचार्य एक अपूर्व क्षमताधारी व प्रतिभासम्पन्न विद्वान थे। ''महाप्रभु'' से अभिहित आचार्य वल्लभ उच्च कोटि के तत्त्व–चिन्तक, शास्त्रीय वचनों का आद्योन्त अध्ययन कर उनके लोक जीवन तथा लोक व्यवहार के अनुकूलन हेतु समर्थ व्यवस्थापक, आध्यात्मिक साधना के प्रबल नियामक, भगवद्नुग्रह भावरूप प्रधान प्रेमलक्षणाभक्ति के अनन्य पोषक तथा भारत के प्रथम श्रेणी के दार्शनिक विचारक–चिन्तक थे। इन्होंने भक्तिभावधारा के शास्त्रीय पक्ष को ही नहीं अपितु उसके व्यवहार्य रूप को भी समग्ररूप से प्रभावित किया है। दर्शन के क्षेत्र में इन्होंने विष्णुशास्त्री द्वारा प्रवर्त्तित ''शुद्धाद्वैत'' सिद्धान्त को मान्यता देते हुए इसके साधन पक्ष हेतु भक्ति प्रधान ''पुष्टिमार्ग'' की स्थापना की। ''शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद'' के संस्थापक के रूप में ये एक ऐसे क्रान्तिकारी युगदृष्टा महापुरुष थे, जिन्हें अपने जीवन में ही स्वप्रतिपादित धार्मिक उपासना पद्धति की पूर्ण प्रतिष्ठा का समुचित दिग्दर्शन व प्रतिष्ठापन करने का अवसर प्राप्त हुआ था। धर्म की व्यावहारिक व्याख्या तथा सामान्य जन के लौकिक जीवन में उसका संगत स्पष्टीकरण करने में आचार्य वल्लभ का योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अपने अन्यान्य ग्रंथों (लगभग तीस) के द्वारा इन्होंने जिस भक्ति भावना का सैद्धान्तिक विवेचन किया, वह मूलतः आध्यात्मिक क्षेत्र से सम्बद्ध होने पर भी व्यावहारिक जीवन के सुख शान्तिपूर्ण यापन के लिए एक क्रियात्मक विनियोग सिद्ध हुआ है।

आधिकारिक रूप से राधाकृष्ण को आलम्बन बनाकर कृष्णभक्ति का प्रचार करने का श्रेय यद्यपि श्रीनिम्बकाचार्य को दिया जाता है परन्तु वास्तविकता यह है कि उत्तरी भारत में भक्ति भाव धारा को नवीन रूप से अंकुरित, विकसित व प्रवाहित कर जन सामान्य को सम्मोहित करने का श्रेय आचार्य वल्लभ की बौद्धिक प्रतिभा को ही है। इन्होंने ही अपने गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण की सेवा के द्वारा वैष्णव धर्म में नवीन शक्ति का संचार ही नहीं किया अपितु दक्षिण भारत के भक्ति–आन्दोलन को उत्तर भारत में संगठित कर पूर्णता प्राप्त कराने में प्रमुख भूमिका–निर्वाह के अप्रतिम कारक भी सिद्ध हुए। इस दिशा में यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि ब्रज भाषा में अत्यन्त संवेदनशील प्राण धारा से उद्वेलित एवं महान आदर्शों से अनुप्राणित भक्ति साहित्य के प्रेरक आचार्य वल्लभ ही है– आचार्य वल्लभ के सिद्धान्त वस्तुतः अन्य दार्शनिक सिद्धान्तों की अपेक्षा सर्वाधिक सरल, बोधगम्य तथा व्यावहारिक हैं– प्रायः आश्चर्य होता है कि ये सिद्धान्त उच्च शिक्षा स्तर पर भी अपेक्षित व्यापक प्रचार क्यों नहीं पा सके? अष्टछापी कवियों के काव्य–अध्ययन हेतु कभी–कभी आचार्यजी के सिद्धान्तों की विद्यालयी शोध प्रबन्धों

में प्रासंगिक संकेत सूत्र अवश्य उपलब्ध हो जाते हैं लेकिन तात्विक गहन अध्ययन का नितान्त अभाव है। मूल तथ्य तो यह है कि आचार्य वल्लभ के दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या ही अष्टछापी साहित्य का आधार स्रोत है। आचार्य वल्लभ ने ही प्रमुखतः उत्तर भारत की सामान्य व श्रेष्ठि वर्ग की जनता को 'शक्तिशीलसौन्दर्य' से आवृत श्रीकृष्ण लीलाओं की आध्यात्मिकता में अवगाहन करने का अवसर प्रदान कर अभूतपूर्व मानसिक दृढ़ता व दूरदर्शिता का परिचय दिया। दाक्षिणात्य परिवार के आचार्य वल्लभ तैलंग ब्राह्मण थे जिनका आविर्भाव संवत् 1535 में बड़ी ही विषम परिस्थितियों में चम्पारण्य में हुआ था। शैशव इनका काशी में व्यतीत हुआ और गृहस्थ जीवन अडेल में। दक्षिण में विजयनगर के राजा श्रीकृष्णराय के यहाँ शास्त्रार्थ में अद्वैतवादियों को परास्त कर आचार्य पदवी प्राप्त की और तीन बार भारत–भ्रमण करते हुए ''प्रेमलक्षणाभक्ति'' के आधार पर ''पुष्टिमार्ग'' की स्थापना कर अपने मार्ग के सिद्धान्त–निरूपण हेतु श्रीसुबोधिनी शुद्धाद्वैत मार्तण्ड, तत्वदीप निबन्ध, सिद्धान्त मुक्तावली, षोडशग्रन्थ आदि ग्रन्थों की रचना की– ब्रह्मसूत्र पर लिखा गया इनका भाष्य अणुभाष्य कहा जाता है। इनका तिरोभाव सम्वत् 1587 आषाढ़ शुक्ला तृतीया को हुआ। इस प्रकार अपने बावन वर्ष दो मास सात दिन के अल्पकालीन जीवन में ''शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद'' के साधन पक्ष के रूप में ''पुष्टिमार्ग'' को प्रतिष्ठापित करके महाप्रभु वल्लभाचार्य ने वैष्णव धर्म की व्यावहारिक व्याख्या तथा मानव समाज के लौकिक–अलौकि जीवन में उसका समुचित अनुप्रयोग करने में अभूतवपूर्व भूमिका का निर्वाह किया है। कहना असंगत न होगा कि सामान्य जन–जीवन को विषमतम प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपेक्षित मानसिक व भावात्मक सम्बल प्रदान कर, उसकी आत्मतुष्टि की दिशा में यह मार्ग एक क्रियात्मक विनियोग के रूप में कार्यक्षम है। ''चतुःश्लोकी'' में आचार्यजी ने स्पष्ट निर्देश दिया है–

एवं सदा स्वकर्त्तव्यं स्वमेव करिष्यति।
प्रभु सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिन्तता व्रजेत।।
यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतःसर्वात्मना हृदि।
ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकै वैदिकैरपि।।

तात्विक दृष्टि से यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि व्यक्ति जीवन में अध्यात्म और व्यवहार–दोनों का सन्तुलन आवश्यक है क्योंकि अध्यात्मशून्य व्यवहार व्यक्ति को आन्तरिक शक्ति से वंचित कर देता है तो व्यवहारशून्य अध्यात्म जीवन की वास्तविक आवश्यकता पूर्ति में प्रायः असमर्थ। मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि हर्ष–विषाद, दुःख–सुख, शोक–चिन्ता आदि से मानव जीवन स्वभावतः आबद्ध है। अध्यात्म और व्यवहार के सम्यक् सन्तुलन से ही मानव जीवन इतना पवित्र और सन्तुष्ट बन सकता है कि कोई विकृति उसे स्पर्श भी नहीं कर सकती। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने व्यक्ति के शील,

आचरण, चिन्तन और व्यवहार आदि सभी पक्षों को समाहित करके ही ''नवरत्न'' में सूत्रवाक्य लिखेः–

चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति,
भगवानपि पुष्टिस्था न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्।
निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैः जनैः।
सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति।।
सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो न प्रत्येकमिति स्थितिः।
अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपि चेत्।।

यहाँ तक कि यदि किसी जीव ने भक्त रूप में अपने प्राणों को भगवान के अधीन कर दिया है अथवा आत्म निवेदन किया है तो भी उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए–

अज्ञानादथवा ज्ञानात् कृतमात्मनिवेदनम्।
यै कृष्णसात्कृत प्राणैस्तेषां का परिवेदना।।

आत्म निवेदन, ब्रह्मसम्बन्ध अथवा कृष्ण–सेवा और अनुग्रह–आचार्य वल्लभ के दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना के नियामक निष्कर्ष हैं। यह जगत् व जीव सभी कुछ एक ही ब्रह्म के अविकृत परिणाम हैं। अपनी 'आविर्भाव तिरोभाव' शक्तियों के कारण ब्रह्म एक से अनेक तथा अनेक से एक हो जाता है। जगत् उसकी आत्मकृति है– ब्रह्म एवं जीव में वस्तुतः अंश–अंशी सम्बन्ध होता है। अतः जीव अपने अंशी से कहीं अधिक असमर्थ ही नहीं, अपने अंश के वशीभूत भी रहता है। जीव की सत्ता भी यद्यपि ब्रह्म के समान ही सत्य तथापि जीव ब्रह्म नहीं है, वह ब्रह्म का अंश मात्र है। वह सम्पूर्ण रूपेण ब्रह्म नहीं है, किन्तु चैतन्य गुण युक्त होने के कारण वह समस्त शरीर में व्याप्त हो जाता है। आविर्भाव–तिरोभाव की शक्तियों से ब्रह्म में ही सब पदार्थों का आविर्भाव एवं उनका तिरोभाव होता है। ब्रह्म का स्वरूप माया से अलिप्त नितान्त शुद्ध है जबकि उसका अंशी 'जीव' पाँच प्रकार के दोषों से युक्त होता है–

1. **सहज दोष–** जन्म के साथ ही उत्पन्न होने वाले (काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि)।
2. **देशज दोष–** स्थान विशेष में रहने के कारण।
3. **कालज दोष–** युगधर्म के कारण उत्पन्न होने वाले।
4. **संयोगज दोष–** परिस्थितियों के कारण तथा
5. **स्पर्शज दोष–** नित्य जीवन में अपवित्रता का समावेश होने के कारण उत्पन्न होने वाले दोष– ये पांचों प्रकार के दोष दीक्षा अथवा ब्रह्मसम्बन्ध प्राप्त होने पर नष्ट हो जाते हैं– लेकिन दीक्षा प्राप्त भक्त के लिए यह आवश्यक है कि दोष निवृत्ति

के उपरान्त सभी उपभोग्य वस्तुओं का पहले भगवदर्पण करने के पश्चात् ही उनका स्वयं उपभोग करे– असमर्पित वस्तुओं का सर्वथा त्याग करे। "सिद्धान्तरहस्यम्" में महाप्रभु ने सभी प्रकार के दोषनिवारण हेतु ब्रह्मसम्बन्ध की अनिवार्यता पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है–

ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयो, सर्वदोष निवृत्तिर्हि दोषा पच्चविधास्मृताः।
अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन, असमर्पित वस्तूनां तस्माद् वर्जनमाचरेत।।

पुष्टिमार्ग की विशेषता ही यह है कि सर्वात्मभाव से आत्मनिवेदन रूप ब्रह्म सम्बन्ध की दीक्षा प्राप्त कर एक सामान्य जन भी भगवत्सेवा करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है– आत्मनिवेदन के पश्चात् एक भक्त के समस्त लौकिक व व्यवहारिक कार्यों का सम्बन्ध भगवान् के साथ हो जाता है– "स्वरूपसेवा" के माध्यम से सांसारिक जीव के चित्त को प्रभु में लीन होने का विधान भी इसी मार्ग की विशेषता है– सेवा विधि में तनुजा, वित्तजा से कहीं अधिक मानसी सेवा को महत्व प्रदान किया गया है– "सिद्धान्तमुक्तावली" के प्रथम श्लोक में ही महाप्रभु ने स्पष्ट कर दिया है।

नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम्।
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा स्मृता।।

भक्त हृदय की समस्त तन्मयता, एकाग्रता, दृढ़ता एवं सर्वात्मभाव से आत्मसमर्पण की उद्दाम भावना ही इस मार्ग में अपेक्षित है और यह भी स्पष्ट किया गया है कि भक्त के मन को आनंद श्रीकृष्ण प्रभु में ही अविछिन्न रूप से सर्वतोधिक स्नेह, दृढ़ विश्वास, वस्तुतः उसके निरन्तर सन्निकट रहने से ही प्राप्त हो सकता है– यह सब व्यवस्था हो जाने पर भी "अनुग्रह, पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः" का विधान देकर आचार्य वल्लभ ने वस्तुतः "भगवद्नुग्रह" को ही अंश–अंशी एक्य के लिए मूल कारण सिद्ध किया है– अंशी के रूप में साधक को केवल "भगवद्नुग्रह" के लिए "भावासक्ति" का प्रयास अभिप्रेत है क्योंकि इसी अवस्था को प्राप्त भक्त–साधक की समस्त लौकिक मनोवृत्तियों का समर्पण प्रभु चरणों में हो सकता है साथ ही उसे स्वयं भी अलौकिक सामर्थ्य प्राप्ति का अवसर प्राप्त होता है। "आत्मानन्दरसपान" की दिशा में यह प्रथम सोपान है– आत्मानन्द के उद्रेक का अनुभव करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण के साकार रूप का दर्शन, चिन्तन, मनन आवश्यक है। आचार्य श्री ने "सिद्धान्तमुक्तावली" में स्पष्ट किया है–

आत्मानन्द समुद्रस्थं कृष्णमेव विचिन्तयेत।
लोकार्थी चेत भजेत कृष्णं, क्लिष्टो भवति सर्वथा।।

इस मार्ग में 'प्रभु–अनुग्रह' की अपेक्षा है और भक्त–जीव से त्याग तथा समर्पण की। एक सांसारिक जीव के भाव मंथन का परिणाम रूप यह 'पुष्टिमार्ग' प्रभु कृपा का ही मार्ग है– श्रीकृष्णप्रेमप्रधान यह मार्ग भक्त हृदय की अनन्यतम भावना से सिद्ध होता

है ''भावो भावनया सिद्ध, साधनं नान्येदिष्यते'' इस दिशा में विशेष प्रयोजनीय है। वैष्णवभक्त का भगवत्सेवा और भगवत्कथा में चित्तवृत्ति का आत्मीयकरण उसकी भगवद्भक्ति–वृद्धि हेतु होता है, किसी अन्य जागतिक कामना पूर्ति अथवा लौकिक समृद्धि लाभ के लिए नहीं– अपने सभी निर्धारित कार्यों का भगवान् को समर्पित करने के अतिरिक्त भक्त की स्वयं की कोई आकांक्षा ही नहीं रहती। प्रभु चरणों में आत्मनिवेदन, आत्मसमर्पण कर भक्त अनायास ही परमानन्द रसपान कर मानसिक दृढ़ता व परिपक्वता प्राप्त कर सकता है। देखा जाए तो किसी एक धर्म मार्ग को व्यावहारिक जीवन शैली का एक अभिभाज्य अंग बनाए जाने का यह एक अनुपम प्रयोग है जिसके अवगाहन से एक भक्त साधक स्वयं देवीयप्रेम से परितृप्त ही नहीं होता, अपितु स्वयं भी सभी सांसारिक जीवों को उस दिव्य प्रेम से अभिसिक्त करने के लिए तत्पर रहता है। यहाँ यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि भारत में 'धर्म' आंग्ल शब्द रिलीजन (**religion**) के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ– यहाँ तो ''धर्म'' जीवनधारण की योग्यता विकसित करने वाला एक विश्वास है, एक जीवन शैली है जिसके बहु–आयामी निहितार्थ मानवीय व्यवहार के समस्त लौकिक पक्षों को आध्यात्मिक चेतना से परिवेष्टित करते हैं। पुष्टिमार्गीय धर्मसाधना सांसारिक जीव–जगत की विभिन्नताओं में एकता की अमरत्व सत्ता का निरूपण कर इन्हीं निहितार्थों को परिलक्षित करती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आचार्य वल्लभ के द्वारा विरचित अनेक ग्रन्थों में दर्शनशास्त्र अथवा मानवीय व्यवहार पक्ष से सम्बद्ध जितने भी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, उनका मूल उद्देश्य है– ''जीव का अपने प्रकट स्वरूप में ही सच्चिदानन्दता प्राप्त करना''– यही कारण है कि इन सिद्धान्तों में कहीं भी गृह त्याग, अथवा सन्यास लेकर ज्ञान प्राप्ति का सन्देश नहीं है यहाँ तक कि भक्त साधक भगवद्नुग्रह के हेतु केवल भक्ति की ही कामना करता है, मोक्ष की नहीं। एक भक्त जीव का कार्यरत रहना आवश्यक है– कारण? उसके समस्त कार्यों को सम्पन्न करने की प्रेरणा तो उसके आराध्य 'श्रीकृष्णप्रभु' से ही प्राप्त हो रही है– भक्त जीव तो केवल कर्म में संलग्न रह रहा है जिससे कि वह उस कर्म को भगवान् को समर्पित कर सके। महाप्रभु विरचित ''सन्यास निर्णयः'' और ''निरोधलक्षणम्'' इस दिशा में पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। ''निरोधलक्षणम्'' में स्पष्टतः निर्देश दिया गया।

हरिमूर्ति सदा ध्येया संकल्पादपि तत्रहि।
दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा।।

इस मार्ग में गृहस्थाश्रम वर्जित नहीं है– ''विवेक धैर्याश्रय निरूपणम्'' में वर्णित विवेक, धैर्य और आश्रय के तत्त्वचिन्तन के परिप्रेक्ष्य में जीवन यापन करते हुए सर्वदा यही स्मरण रखना चाहिए कि–

ऐहिके पारलोके च सर्वदा शरणं हरि।
दुःखहानौ तथा पाप भये कामद्यपूरणे।।

अतः गृहस्थाश्रम के समस्त मांगलिक कार्यों का उमंगपूर्ण हर्षोल्लासपूर्वक सम्पादन करते हुए ''श्रीकृष्णः शरणं मम'' का जाप करते रहना इस मार्ग का एक मात्र अभिप्रेत कर्म है। इस मार्ग में भगवदस्वरूप की 'सेवा' का ही विधान है, 'पूजा' का नहीं, क्योंकि भक्त जीव को पूजा के विधि–विधान की कोई आकांक्षा नहीं रहती– वह तो 'सेवा' के द्वारा ही अपने आराध्य श्रीकृष्ण से आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करता हुआ अपने समस्त गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्यों को भी उन्हीं सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में सम्पादित करता रहता है। अपने सेव्य–स्वरूप को अपने गृह में ही चित्ररूप अथवा बालकृष्ण स्वरूप की छोटी मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठा कर सेवा कर सकते हैं अथवा अपने मन्दिर में जाकर अचल मूर्ति रूप में स्थापित देवविग्रह (श्रीकृष्ण बालस्वरूप) की सेवा में सम्मिलित हो सकते हैं जिससे कि ''आज के आनन्द की जय''– जैसा घोष दर्शनार्थी के श्रवण–मनन के स्तर पर उसे जीवन को सकारात्मक रूप में जीने की, फलासक्ति रहित कर्म करने की प्रेरणा देता रहे। श्रीनाथद्वारा में स्थापित देवविग्रह श्रीनाथजी की सेवा का प्रातःकालीन मंगलादर्शन निश्चित ही एक बहुप्रयोजनीय आयोजन का अति सूक्ष्म रूप है, जो दर्शनार्थियों को एक ऐसे भावलोक में पहुँचा देता है जहाँ अध्यात्म व भौतिक यथार्थ एकाकार होकर उन्हें मानसिक व शारीरिक दृढ़ता प्रदान करता है। श्रीनाथजी की अष्टयाम सेवा के माध्यम से महाप्रभुजी ने न केवल धर्म क्षेत्र में अपितु व्यावहारिक कर्म क्षेत्र में भी अपनी अप्रतिम बौद्धिक क्षमता की तात्विक उपादेयता सिद्ध की है। अव्यक्त को व्यक्त रूप से प्रदर्शित करने की कला का यह एक ऐसा समन्वित प्रयास है जिसके द्वारा सामान्यजन की भावपुष्टि हेतु लौकिक–अलौकिक साधन–सामग्री ही उपलब्ध नहीं होती अपितु उसकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति भी दृढ़ रहती है और यदि ये पार्थिव स्थितियाँ दृढ़ न भी रहें तब भी उसे किसी प्रकार की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है– महाप्रभुजी ने अपने ग्रन्थ ''नवरत्न'' में स्पष्टतः आदेश दिया कि–

अज्ञानादथवा ज्ञानात् कृतामात्मनिवेदनम्।
यैः कृष्णसात्कृत प्राणैः तेषां का परिवेदना।।

चिन्ता करना सामान्यतः सभी जन की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है और इस चिन्तातुरता से अनेक शारीरिक व मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं– आचार्य वल्लभ ने चिन्तामुक्ति हेतु भगवत्सेवा अथवा भगवत्कथा में दृढ़ आसक्ति को प्रश्रय दिया है यथा–

सेवायां कथायां च यस्यासक्तिर्द्दढ़ा भवेत्।
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम।।

सेवा अथवा कथा श्रवण, सत्संग–कीर्तन आदि के द्वारा भगवत्कृपा में विश्वास दृढ़ होता है तथा यह दृढ़ विश्वास जीवन के प्रत्येक कार्यकारी क्षेत्र में सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने को प्रेरित करता है, परिणामतः जीव का मानसिक सन्तुलन बना रहता है और शारीरिक रूप से वह निर्बल या अस्वस्थ नहीं रहता।

चौरासी अथवा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि समसामयिक समाज के सभी जीवों – (निम्न व उच्च वर्ग, चारों वर्ण राजा–रंक, पठान कुणवी, कुंजरी आदि के सभी जन) को प्रभुकृपा का पात्र बनने की योग्यता प्राप्त करने के लिए मात्र अनन्य प्रेमपूर्ण दैन्य भाव से सेवा, शरण, स्मरण, सत्संग जैसे साधनों पर अवलम्बित रहने की अपेक्षा की जाती है। पुष्टिमार्ग एक प्रकार से भौतिक जगत के यथार्थ धरातल पर ही मानवीय वृत्तियों के उदात्तीकरण के लिए दिशा–निर्देश देता है परिणामतः सामान्य जीव भी अपनी सभी विपत्तियों असफलताओं अथवा अहंकार–दर्पजनित कल्पषताओं पर विजय प्राप्त कर भगवद्नुग्रह से 'श्रीकृष्ण' के 'स्वरूपानन्द का रसास्वादन कर सकता है। सम्पूर्ण शक्ति सम्पन्न 'श्रीकृष्ण प्रभु' भक्त जीवों के सभी प्रकार के लौकिक कष्टों के विमोचन में स्वतः समर्थ हैं, आवश्यकता है केवल भक्त जीव की परम निष्ठा एवं दृढ़ विश्वास की– और जिसकी पुष्टि ''कृष्ण एव शरणं मम, कृष्ण एव गतिर्मम'' के निरन्तर पाठ से ही सम्भव हो जाती है। वस्तुतः सर्वभाव से किए गए 'आत्मनिवेदन' के पश्चात् भक्तजीव के समस्त कार्यों का सम्बन्ध प्रभु–चरणों के साथ हो जाता है। अतः प्रभु का अपने भक्त की रक्षा करना स्वाभाविक है– इस कारण भक्तजीव प्रभु कृपा के प्रति पूर्णतया विश्वस्त होकर चिन्तारहित जीवन व्यतीत करने में समर्थ हो जाता है। सम्पूर्ण आत्मसमर्पण के द्वारा अपनी समस्त भौतिक–ऐहिक कामनाओं का निवेदन प्रभु चरणों में करके उसे जिस ''स्वरूपानन्द'' के रसपान का अनुभव होता है वह वर्णनातीत ही नहीं उसके स्वस्थ–सफल जीवनयापन का प्रमुख स्त्रोत भी बन जाता है।

यही नहीं अपितु महाप्रभुजी ने मानव समाज की आध्यात्मिक साधना हेतु जिस भाव प्रधान मार्ग को प्रशस्त किया, उसमें प्राकृतिक पर्यावरण का महत्व–सम्पादन विशद्रूप से किया गया है– प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण की दिशा में उनका विरचित ''यमुनाष्टकम्'' एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसका प्रारम्भिक श्लोक–

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धि हेतुं मुदा।
मुरारिपदपंकज स्फुरदमन्द रेणुत्कटाम्।।

श्रीमहाप्रभुजी ने ''यमुनाष्टकम्'' में यमुनास्तुति रूप केवल आठ श्लोक लिखे हैं इनके माध्यम से ब्रजभूमि, गिरिराजपर्वत, कलिन्दपर्वत शिखर मोतियों के समान चमकने वाली बालुका, गोप–गोपीजन, वृक्ष, तड़ाग, तोता, मोर आदि पक्षीवृन्द आदि सभी को महत्त्व प्रदान किया है। यह सत्य है कि ये श्लोक एक विशिष्ट धार्मिक दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में लिखे गए हैं लेकिन इनमें आचार्यजी की प्राकृतिक पर्यावरण के सुरक्षात्मक संरक्षण की सक्रियता सिद्ध होती है। भौतिक पर्यावरण के साथ स्वस्थ सह–सम्बन्धों के प्रति उनकी जागरूकता की सारगर्भिता सूर–रसखान आदि के काव्य में स्पष्टतः प्रत्यक्ष होती है। सम्पूर्ण ब्रज प्रदेश, वहां के पशु–पक्षी, वन–वृक्ष आदि सभी जैसे एक अलौकिक

परमतत्व से अभिभूत प्रतीत होते हैं यथा वृक्षे–वृक्षे वेणुधारी, पत्रे–पत्रे चतुर्भुजः, यत्र वृन्दावने तत्र लक्ष्यालक्ष्य कक्षा कुतः।''

पुष्टिमार्गीय भक्तिसाधना में मानव के व्यावहारिक जीवन के सभी मांगलिक कार्यों का यथाविधि सम्पादन पूर्ण हर्षोल्लास से करने की व्यवस्था है। इसके अनुशासन में सांसारिक जीवन के दोनों पक्ष भाव और तद्नुसार व्यवहार क्रिया पक्ष एकीकृत रूप में जिस प्रकार भक्त जीव को परमानन्दानुभूति करने हेतु सम्मिश्रित किए गए हैं वह अन्यत्र किसी भी दर्शन में नहीं। श्रीनाथजी मन्दिर में अष्टयाम सेवा के विधान से मनुष्य के सामाजिक–मानसिक व आर्थिक चेतना शक्ति का जो संगठित स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, उसकी अनुभूति शब्दातीत है। प्रातःकालीन मंगला के दर्शन हेतु संगीत की स्वरलहरी के मध्य सम्पूर्ण नाथद्वारा क्षेत्र का मानव समुदाय जिस प्रकार एक आध्यात्मिक उद्देश्य प्राप्ति हेतु एकत्र होता है उससे त्रियामी लाभ प्रत्यक्षतः होते हैं–

1. प्रातःकालीन भ्रमण से शारीरिक स्वास्थ्य लाभ।
2. सामूहिक रूप से एकत्र होने के कारण पारस्परिक अर्न्तसम्बन्धों का विकास तथा
3. प्रभुदर्शन के द्वारा ''आज के आनन्द की जय घोष'' के साथ आध्यात्मिक चेतना वृद्धि से अपनी व्यक्तिगत अन्तर्निहित क्षमता का विकास। मन्दिर प्रांगण में एक साथ ही संगीत की स्वर लहरी, भागवत कथा श्रवण, भोग सामग्री की तैयारी हेतु एकत्र जन समूह, सत्संग, संकीर्तन में जिस प्रकार भाव रसास्वादन करता है, वह अनिर्वचनीय है साथ ही पुष्टिमार्गीय विधि की व्यावहारिक उपादेयता भी सिद्ध करता है। आचार्य वल्लभ जैसे युगदृष्टा के दार्शनिक सिद्धान्तों में प्रतिपादित अनुशासन, श्रद्धा भक्ति व आदर्शों को सम्पूर्णतः समझने के लिए हमें पूर्णतः अज्ञात को ज्ञात से कहीं अधिक महत्व देने की मानसिक दृढ़ता को आलम्बन बनाना होगा। महाप्रभुजी ने अज्ञात तत्व की अवास्तविकता के निराकरण के लिए ही श्रद्धापूर्वक स्मरण, मनन, ध्यान व प्रार्थना से हृदय में भगवत् कृपा का अनुभव करने हेतु सेवाक्रमों की व्यवस्था कर सामान्य जीव के लिए भी व्याधिरहित, मानसिक रूप से सुदृढ़, सन्तुष्ट एवं परमानन्द का रसास्वादन करने का मार्ग प्रशस्त किया है। भारतीय परम्परा में मन्दिर को एक वर्तुल के रूप में स्वीकार किया गया है– नाथद्वारा का श्रीनाथजी मन्दिर इसी परम्परा का निर्वाह करता हुआ सभी दर्शनार्थियों की आध्यात्मिक क्षुधा शान्ति तथा उन्हें स्वस्थ संवेदनपूर्ण सामाजिकता के निर्वाह हेतु अपेक्षित पर्यावरण की प्रस्तुति कर रहा है। इस प्रसंग में अखिल भारतीय पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद् के पूर्व मुख्य सचिव स्वर्गीय डॉ. गोवर्धननाथ शुक्ल के शब्द विशेष उल्लेखनीय हैं– उनके अनुसार ''धर्म की संकीर्ण व्याख्या से सुरक्षा पुष्टिमार्ग की विशेषता है– यह एक सिद्धान्त है, एक व्यवहार्य मार्ग है जिसमें विश्वधर्म बनने की सम्पूर्ण क्षमता विद्यमान है।'' इत्यलम्   ।। जय श्रीकृष्ण।।

।। श्रीहरिः ।।

(श्रीकृष्णाय नमः।)

पुष्टि संप्रदाय की स्थिरता और उन्नति अब कैसे विद्यमान रहे–

–देवर्षि श्रीरमानाथ शास्त्री

पुष्टिमार्ग की उन्नति और स्थिरता अब दो तरह से रह सकती है। एक आग्रहपूर्वक दीक्षा प्रचार और दूसरा नियम बद्ध शिक्षा प्रचार से। पुष्टि मार्ग के आचार्य वर्ग और संप्रदाय पर स्नेह रखने वाले वैष्णवों को इधर पूरा ध्यान देना आवश्यक है। समय बड़ा भयावह है धार्मिक पुरुषों को यथासंभव इसके साथ युद्ध करना पड़ेगा।

1. दीक्षा प्रचार का उपाय।

(क) पुष्टिमार्गीय कुटुम्ब के सांप्रदायिक पुरुषों को चाहिये कि अपने अपने बालकों को सांप्रदायिक पारंपरिक रीति के अनुसार छोटी अवस्था में ही यथा समय आचार्यों के द्वारा नामांकरण और ब्रह्मसंबंध करा देवें। बड़े होने पर उनकी बाह्य शिक्षा उन्हें धर्मइदन्य कर देती है।

(ख) संप्रदाय के नेता आचार्यश्री वैष्णव, ब्राह्मण, विद्वान, मील मालिक, दुकानदार, जमीनदार, फर्मवाले और साधारण वैष्णव गृहस्थों को उचित है कि वे अपने प्रत्येक कार्यों में, स्थानों में जहां तक मिले योग्यतानुसार पहले वैष्णवों का ही संग्रह करें।

(ग) प्रत्येक आचार्य प्रत्येक वैष्णव ब्राह्मण और प्रत्येक वैष्णव धनिक ग्रहस्थों का यह अब अवश्य कर्तव्य रहे कि वे अपने धन से चलती अथवा अपने अधिकार से चलती पाठशालाओं में स्कूल कालेजों में मन्दिरों में उन्हीं अध्यापकों को उन्हीं कार्यकर्ता और सेवकों को पहले स्थान दे जो वैष्णव हों जिन्होंने पुष्टिमार्गीय दीक्षा ग्रहण की हो उन्हीं विद्यार्थियों को साहाय्य छात्रवृत्ति किंवा भोजनाच्छादन प्रथम दें जिन्होंने शरण मंत्र और ब्रह्मसंबंध ग्रहण किया हो।

शिक्षा प्रचार का उपाय–

शास्त्रार्थ का समय गया। अब प्रचार का जमाना है। अब इस समय वैष्णव जनता प्रामाणिक और रोचक व्याख्यानों की अपेक्षा रखती है। वैष्णव जनता में वैष्णव धर्म का उचित अपेक्षित प्रचार नहीं है, शास्त्रार्थो से विरोधी द्रव तैयार होता है और प्रामाणिक सुन्दर उपदेशों से अनुकूल दल तैयार होता है। आज तक शास्त्रार्थ की दृष्टि रखकर ही शिक्षा का प्रचार होता चला आया है पर वह अब अनपेक्षित और अनावश्यक है, प्राचीन शैली की शिक्षा से एक देशी अध्यापक मात्र तैयार होते है किन्तु वे वैष्णव जनता में वैष्णव धर्म का प्रचार नहीं कर सकते प्रत्युत एक देशी होने से वैष्णव धर्म की कमी और हीनता को भी कभी कभी प्रकाशित कर देते हैं, उस विषय का पूरा पूरा सामर्थ्य न रहने से।

इसके विपरीत वैष्णवी जनता में दूसरी तरह का ही प्रचार हो रहा है। प्रत्येक वैष्णव गृहस्थ के यहां वैद्य ज्योतिषी कर्मकाण्डी और पुराणी की आवश्यकता रहती है अतएव ये चारों यथा संभव सबके यहां मौजूद हैं ये चारों प्रायः वैष्णव न होने से किंवा अन्य मार्गीय होने से अपना अपना प्रचार करते हैं, अपने धर्म की जानी हुई बातों को ही गृहस्थी के हृदय में उतारते है। प्रत्युत कहीं कहीं तो वैष्णव धर्म के विरुद्ध भी प्रचार होता है। इस बात को प्रायः सबही समझदार वैष्णव देख रहे है। और सहन कर रहे हैं। दुसरी तरफ रातदिन के मिलने वाले व्यवहारी लोग प्रवाही होने से अपना प्रचार कर रहे हैं। धर्म से उदासीन बना रहे हैं। ऐसी अवस्था में व्यवहारियों का प्रतीकार यद्यपि हम नहीं कर तथापि जो बात हमारे हाथ में है उसका उपाय हम कर सकते हैं।

भारत वर्ष में चार आश्रमों के दो विभाग है, योग और क्षेम। यद्यपि आजकल चारों आश्रम ही दुर्दशाग्रस्त हो रहे हैं विशेषकर वानप्रस्थ तो रहा ही नहीं है तथापि टूटी फुटी हालत में भी विद्यार्थी जीवन और ग्रहस्थ जीवन किसी तरह भी विद्यमान है। उसमें विद्यार्थी जीवन योग है तो ग्रहस्थ जीवन प्राप्त का परिपालन है।

हम अपनी ही बात करते हैं, सांप्रदायिक पाठशालायें वैष्णव विद्यार्थियों को योग प्राप्त करने के स्थान हैं। उनमें से कितनी पाठशालायें ऐसी हैं जिनमें वे अपने धर्म और अर्थ के निर्वाह की शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। अंग्रेजी शिक्षा धर्म की बिलकुल परवाह न करके अर्थ करी शिक्षा है यह माना किन्तु जहां धर्म की अपेक्षा रखकर अपने जीवन निर्वाह की शिक्षा किंवा जीवन निर्वाह की अपेक्षा रखकर धार्मिक शिक्षा दी जा रही है। वैसी पाठशाला कितनी है यह प्रश्न है। वैष्णव जनता में धर्मोपदेश की बड़ी अपेक्षा है। अतएव पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है किन्तु इधर केवल सांप्रदायिक शिक्षा उस अर्थ से शून्य मालुम दे रही है। कितने ही वैष्णव धर्म देशी विद्यार्थियों को यो बहकाते है कि संप्रदाय पढ़कर तुम्हें नोकरी कहां मिलेगी। व्याकरण किंवा न्याय की आचार्य किंवा शास्त्री परीक्षा दे लोग तो कहीं न कहीं सरकारी नौकरी तो मिल जायगी। अब इसका भी विचार कर लें। सरकारी संस्कृत पाठशाला में राजा महाराजा तथा गृहस्थों की पाठशालायें आंख मींचकर शास्त्रार्थी पंडित ढालने की मशीनें हैं। प्रत्येक वर्ष सहस्त्रशः वैयाकरण न्यायी प्रभृति विद्वान उनमें से वर्षा ओलोंकी तरह जमीन पर गिरते रहते हैं यह माना किन्तु वे सब शास्त्रार्थी और अध्यापक ही प्रायः तैयार होते हैं। किन्तु अध्यापन की जगह ही कितनी है और शास्त्रार्थ की अपेक्षा ही किसको है अब देखना यह है कि पुष्टिमार्गीय समाज को क्या अपेक्षित है। यदि व्याकरण न्याय और शोकर वेदान्तादि के पारंगत विद्वान ही अपेक्षित हैं तब तो वैष्णवों के और वैष्णवाचार्यों के लाखों के धन को व्यर्थ खोना चाहिये। पुष्टिमार्गीय सब पाठशालायें उठा देनी चाहियें। उस बात के लिये तो हजारों पाठशालायें हैं ही। सैंकड़ों न्याय व्याकरण के शास्त्री फिरते हैं उन्हें पहले ही स्थान नहीं मिलता। एक दूसरे की मरना या उच्चाटन नहीं चाह रहा है उसमें पुष्टिमार्गीय भी अकाल जलदोदय मात्र करना है।

इसलिये जब खुद न्याय व्याकरण के भरे पंडितों को अपने जीवन पर तरस आ रहा है

तब पुष्टिमार्गीय समाज को अवश्य इधर ध्यान देना उचित है। वास्तव में केवल व्याकरण के ऊंचे विद्वान की वैष्णव साधारण जनता को किसी अवस्था में भी अपेक्षा है ही नहीं। उसे आजकल अपेक्षा है प्रामाणिक रोचक धर्मोपदेश की, कभी दुपहरी में जिस तरह ठंडे मीठे जल की प्यास रहती है इसी तरह आजकल वैष्णव समाज को अपने धर्म के ज्ञान की प्यास कहीं कहीं हो रही है। एकदम प्यास लगने पर भी जब जल नहीं मिलता तब थोड़े समय में वह मनुष्य बे खबर हो जाता है और उसे प्यास भी नहीं रहती यही हालत अब वैष्णव समाज की होने वाली हैं। प्रत्येक गृहस्थ के यहां चारों तरफ से विरोधी प्रचार हो रहा है और बढ़ रहा है, और अपने यहां निजधार्मिक प्रचार का अभाव होता जाता है ऐसी हालत में वैष्णव समाज अपने धर्म से बेखबर हो जायगा अतएव उसे उसकी पिपासा भी मिट जायगी।

यही बात किसी अंश में सत्य भी हो सकती है कि केवल वेदान्त किंवा केवल संप्रदाय विद्या का अध्ययन कर पर–मुखापेक्षी रहना पड़ता है। एक न एक दिन जीविका मिलना दुर्लभ हो सकता है। किन्तु संप्रदाय में सम्प्रदाय के प्रचारकों की आवश्यकता है ही यह भी सत्य है। इसलिये इसका एक ही उपाय हो सकता है कि पाठशालाओं में साम्प्रदायिक अध्ययन के साथ साथ विद्यार्थियों को अर्थ करी विद्या का अध्ययन भी अपेक्षित है। विद्यावैधक ज्योतिष पुराण एवं कर्मकाण्ड के प्रायः सब ही जीविका के साधन गिने जा रहे हैं। अतएव मुख्य सम्प्रदाय ग्रन्थाध्ययन रहे और गौण रीति से जीविकोपार्जनानुकूल इन चारों की भी शिक्षा दी जाय।

साम्प्रदायिक शिक्षा का ध्येय–

प्रमाण–प्रमेय–भावना–साधन और प्रचार। अनुभव से विचार का परिवर्तन होना संभव है और सत्य है। अभी तक जिस प्रकार की शिक्षा साम्प्रदायिक पाठशालाओं में दी जाती थी अनुभव से यह प्रतीत हो रहा है कि अब उसमें आवश्यक परिवर्तन होना आवश्यक है, अभी तक जिन अणुभाष्य विद्वन्मण्डनादि की शिक्षा पाठशालाओं में दी जा रही है वह प्रमाण प्रधान होने से एक ही प्रकार की है। किन्तु यह प्रकार प्रचार के समय अधुराही रहता है। वास्तव में तो प्रमाण का विचार भी जब करते हैं तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थों से पूरे पूरे प्रमाण का भी अध्ययन नहीं होता। सम्प्रदाय में मुख्य प्रमाण ग्रन्थ वेदोपनिषद गीता और श्रीमद्भागवत हैं। अणुभाष्य में पूरा पूरा विवेचन सूत्रों का है और विद्वमंडन मतान्तर तुलनात्मक ग्रंथ है। इन दोनों में पूर्वोक्त प्रमाणमय पूरे पूरे अनुशीलन में नहीं आने पाते अतएव इनके अध्ययन कर लेने पर भी उनके अध्ययन करने की आवश्यकता रही आती है। यदि इतना मात्र अध्ययन करके रह जाय तो शायद उसे प्रमेय किंवा प्रमाण विषय का तीन अंश बाकी ही रह जाय।

संप्रदाय मे केवल प्रमाण और प्रमेय ही अन्तर्निहित नहीं हैं। किन्तु प्रमाण, प्रमेय, भावना और साधन चारों के समुच्चय का नाम सम्प्रदाय है। इन चारों का यदि आंशिक भी वैदुष्य प्राप्त कर ले तब वह पुष्टिमार्गीय विद्वान् कहा जा सकता है। प्रायः पुरानी परिपाटी से पढ़े हुए भी विद्वान् भावना, साधन और प्रमेय के विषय में अपूर्ण ही रहते हैं यह देखा जाता है। इसलिये पुष्टिमार्गीय प्रचार की दृष्टि से प्रमाण, प्रमेय, भावना, साधन इन चारो का अध्ययन आवश्यक है। ।। जय श्रीकृष्ण।।

पुष्टिमार्गीय आचार्यों का सेवानुराग

–डॉ. राकेश तैलंग

प्रभुचरण श्रीगुसांईजी के द्वितीय पुत्र श्रीगोविन्दरायजी ऐश्वर्य गुणों से सम्पन्न आचार्य थे। सेवा के प्रति अत्यधिक लगाव के अनेक दृष्टान्त आपके भगवदीय स्वरूप के परिचायक हैं। उत्थापन में नियम पूर्वक झारी भरने का आपका क्रम रहा है। ऐसा कहा जाता है कि आपके शुभ विवाह का मुहूर्त्त गोधूलि वेला में उत्थापन काल में होने पर पू. गुँसाईजी से आज्ञा लेकर ठाकुरजी की झारी भरने की सेवा आपने सम्पन्न की। विवाह का मुहुर्त्त संशोधित किया गया लेकिन सेवानुरागता के साथ आपने कोई समझौता नहीं किया।

श्रीगुँसाईजी के चतुर्थपुत्र श्रीगोकुलनाथजी 'यश' गुणों से युक्त आचार्य थे। सेवा भावना में आपकी निपुणता एवं प्रभु को नित्य नवीन लाड़ लड़ाने की तत्परता आपका वैशिष्ट्य रहा। गोपालपुर में आप द्वारा स्थापित बैठक में उधोतिवारी आपके परम सेवक थे। ठाकुरजी की सेवा में एक दिन तिवारीजी ने खिचड़ी की रसोई सिद्ध की। श्रीगोकुलनाथजी ने इस भोग को स्वीकार कर उस दिन जल अधिक पिया। कारण पूछे जाने पर आपने अत्यधिक व्यथित होकर खिचड़ी में नमक अधिक डालने की भूल का स्मरण दिला सेवक को आज्ञा दी– 'रसोई सावधानी से करनी। प्रभुन कौं उत्तम सामग्री को भोग धरनो।' प्रभु की भोग सेवा के प्रति श्रीगोकुलनाथजी का यह आदेश उनके परम भगवद्भक्त होने का प्रमाण कहा जा सकता है।

प्रभु चरण श्रीगुँसाईजी के पंचमपुत्र श्रीरघुनाथजी 'श्री' गुण सम्पन्न आचार्य थे। पिताश्री की आज्ञानुसार रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास को आपने श्रीराम के रूप में दर्शन दिए थे। इसीलिए आप रामचन्द्र के नाम से भी जाने जाते थे। पाँच वर्ष की बाल्यावस्था में श्रीनाथजी की सेवार्थ अपने भाइयों के साथ खड़े हुए थे तब पितृचरण ने सेवार्थ आपको शृंगार पेटिका लाने हेतु आज्ञा दी– ''आनय मंजूषामा'' बालक रघुनाथजी को तब संस्कृत का इतना ज्ञान न होने से शैयागृह में जाकर उहापोह में पड़ गए। कुछ न सूझने, पिता की आज्ञा का पालन न करपाने के दुःख से भर आप रोने लगे। इससे आपके पितामह, महाप्रभु वल्लभाचार्यजी

ने प्रकट होकर अपना चबाया हुआ पान आपको देकर अपने पिता को इसे दे देने को कहा। चर्वित पान लेने मात्र से भी रघुनाथजी को सम्प्रदाय के समस्त सिद्धान्तों एवं शास्त्रों का ज्ञान हो गया। पुनः जब वे अपने पिता के पास लौटे तो उन्हें संस्कृत में 'नामरत्नाख्य स्तोत्र' का पाठ करते हुए सुनकर श्रीगुँसाईजी को प्रसन्नतामिश्रित आश्चर्य हुआ। यह आचार्य कृपा ही है जिससे रघुनाथजी को अल्पवय में ही देव वाणी संस्कृत का ज्ञान हो गया है, अनुभव कर गुँसाईजी को अत्यन्त गर्व हुआ।

परन्तु श्रीनाथजी को बहुत अधिक प्रसन्नता नहीं हुई। श्रीरघुनाथजी ने इस अप्रसन्नता का अनुभव कर लिया। प्रभु श्रीनाथजी ने अपनी पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त की– 'काकाजी। मैं ब्रज को हूँ तातें मोकों तो ब्रजभाषा ही आछी लागत है। तातें आप सेवा में ब्रजभाषा ही बोलो।' प्रभु से यह आज्ञापाकर रघुनाथजी ने ब्रजभाषा में पुष्कल पदों की रचना की एवं संस्कृत को 'पुरूषोत्तम भाषा' के रूप में प्रतिष्ठित किया। ब्रजभाषा की यह सेवा श्रीप्रभु को समर्पण करने का यह अनूठा दृष्टान्त है।

श्रीगुँसाईजी के तृतीय पुत्र श्रीबालकृष्णजी का प्रभु द्वारकाधीश के प्रति अगाध अनुराग था। कहा जाता है कि यमुनाजी ने बालकृष्णजी को स्वामिनी के रूप में द्वारकाधीश प्रभु के साथ विराजने की इच्छा प्रकट की। बालकृष्णजी ने स्वप्न में श्रीयमुनाजी द्वारा प्रकट इस कामना के बारे में अपने पिता से चर्चा की तो उन्होंने पुत्र को दो स्वर्ण कंगन देकर कहा कि यमुनाजी के किनारे साक्षात् स्वामिनीजी तुम्हें दर्शन देंगी, तब ये कंगन उन्हें पहनाकर उन्हें प्रभु के पास खण्डपाट पर पधरा देना।

गुंजावन में यमुनाजल के मध्य अत्यन्त मनोहारी यमुनाजी के स्वरूप की प्राप्ति आपको हुई तब दोनों कंगन हाथों में धारण कराने के बाद वे स्वामिनी स्वरूप को द्वारकाधीश प्रभु के समीप ही पधरा लाएं। अब से वे द्वारकाधीश प्रभु के साथ बालकृष्णजी द्वारा सेवित की जाने लगी। हिन्दुत्व की आस्थाओं के ऐसे दुर्लभ स्वरुपों के संरक्षण की पुष्टि सम्प्रदाय की समृद्ध परम्परा रही है और यह प्रसंग श्रीबालकृष्णजी की इस दृष्टि से सेवानुरागता का उदाहरण है।

।। जय श्रीकृष्ण।।

आचार्य परम्परा और पुष्टिमार्ग

–श्रीगदाधर भट्ट, झालावाड़

निष्पत्ति–परिभाषा

आङ्पूर्वक चर् धातु से यत् प्रत्यय के योग से आचार्य शब्द निष्पन्न है। जिसका अर्थ है वेद का, मंत्र व्याख्याकर्ता एवं गायत्री मंत्र उपदेशक। तै. उपनिषद् में कहा गया है–

वेदममूच्य आचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। (तै.उ.)

वेदाध्यापन कर आचार्य शिष्य को उपदेश देते हैं। आचार्य देवो भव (तै.उ.) उपदेश के माध्यम से आचार्य को देव तुल्य गौरवान्वित किया गया है। श्रुति में उल्लेख है– "आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः– आचार्य उपनयन करता हुआ, शिष्य को अपने गर्भ में परिक्षित रखता है, संस्कारित करता है। स्मृतिकार मनु का कथन है–

उपनीयतु यः शिष्यं वेदमध्यापये द्विजः।
साङ्गच सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते।

जो शिष्य को उपयन देकर उसको यश दिया और उपनिषद सहित समग्र वेद शास्त्र पढ़ाता है, उनको आचार्य कहते हैं। यहां तक वेद ज्ञान प्रदान करने के कारण आचार्य को 'पिता' कहा गया है–

वेद प्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते। (मनु. 2/161)

आचार एवं आचार्य :

आचार्य शब्द का आचार से गहरा जुड़ाव है। स्वयं आचरण कर अन्यों को आचार्य ग्रहण कराने वाले व्यक्तित्व को आचार्य कहा गया है। संस्कृति आचार–विचारों का समन्वित रूप है। आचार को सम्प्रदाय का पर्याय भी माना गया है। कुलार्णव के अनुसार आचार को दो वर्गों में विभक्त किया गया है, दक्षिणाचार एवं वामाचार। दक्षिणाचार में वैदिक, वैष्णव, शैव एवं दक्षिण हैं। वामाचार में वाम, सिद्ध एवं कौल। दक्षिणाचार प्रवृत्ति मूलक हैं किन्तु वामाचार निवृत्ति प्रधान। अतः वामाचार का निषेध है। कतिपय विदेशी विद्वानों ने वैदिक, वैष्णव, शिव जैसे नामों को संप्रदाय सूचक माना है। संप्रदाय प्रवर्तक आचार्य हुए हैं।

ब्रह्मसूत्र एवं आचार्य :

वेदाध्ययन, अध्यापन के साथ ब्रह्मसूत्र के प्रमुख भाष्यकारों को आचार्य संज्ञा दी गई है। बादरायण व्यक्ति ने ब्रह्मसूत्रों का निर्माण किया। 550 सूत्रों का यह ग्रन्थ

वेदान्त सिद्धान्तों का समुच्चय है, जिनकी व्याख्या कर आचार्यों ने अपने धार्मिक मतों की स्थापना की है। ब्रह्मसूत्र के प्रमुख भाष्यकार आचार्य एवं उनके सिद्धान्त इस प्रकार हैं– सर्व श्रीशंकराचार्य,–निर्विशेषाद्वैत,–रामनुजाचार्य,–विशिष्टाद्वैत,–मध्वाचार्य,–द्वैत,–निम्बार्क,–द्वैताद्वेत, वल्लभाचार्य,–शुद्धाद्वैत दर्शन के प्रवर्तक हैं।

आचार्य का महत्व :

आचार्य सदैव वंदनीय है। कभी भी उनकी अवमानना नहीं करना चाहिए। आचार्य के माध्यम से शिष्य भगवदीय ज्ञान को प्राप्त करता है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है– "आचार्यवान पुरुषों वेद" आचार्य से ही दीक्षा प्राप्त होती है, जिसके अभाव में पशु तुल्य जीवन है। पद्म पुराण में तो दीक्षा विहीन मनुष्य को मृतक माना गया है।"

दीक्षाहीनो नरो मृतः। (पद्म पुराण)

पुष्टिमार्ग :

पुष्टि मार्ग भगवत् अनुग्रह का मार्ग है– पुष्टिस्तनग्रहः। प्रभु कृपा पर यह मार्ग आधारित है। पुष्टिमार्ग या पुष्टि भक्ति सम्प्रदाय में दीक्षा प्रणाली नाम मंत्र एवं ब्रह्म संबंध का महत्व है। दीक्षा में यह धर्म सम्पादन आचार्य के लिए निर्धारित है। सम्प्रदाय के संबंध में सत्सिद्धान्त मार्तण्ड में कहा गया है– सम्यक परम्परा से प्राप्त– हरि, मंत्रादि कर्म–ही सम्प्रदाय की पहचान है। सम्प्रदाय में निर्धारित ग्रन्थ, भगवन्नाम, प्रभुसेवा, विहित कर्म प्रभु सेवा है। आचार्य परम्परा आदि का प्रावधान है। सम्प्रदाय के मार्ग का अनुसरण करना अत्यन्त आवश्यक है। गौतमी मंत्र में सम्प्रदाय के अभाव में मंत्रों का जप या पाठ निरर्थक माना गया है।

सम्प्रदाय विहीना ये मंत्रास्ते निष्फल मताः। (गो.ते.)

पुष्टिमार्ग में आचार्यों की परम्परा को स्वीकार किया गया है–

सम्प्रदायो हि परंपरा प्राप्त आचार्य सदुपदेशः। (सत्सिद्धान्त मार्तण्ड)

श्रीठाकुरजी ने आचार्यों को निर्देश दिया है– "तुम जीव कूं ब्रह्म संबंध करवाओ, तिनका ही अंगीकार करुंगो।" जीवों का उद्धार करने के लिए नाम के साथ ब्रह्म संबंध अपरिहार्य है। ब्रह्म संबंध से ही भक्त पुष्टिमार्गीय–भक्त या सेवक कहलाता है। श्रीरामानुज से श्रीमद् वल्लभ पर्यन्त आचार्य भक्ति मार्गीय है, इनमें श्रीमद्वल्लभाचार्यजी पुष्टि निर्गुण भक्ति मार्गीय है। यहां निर्गुण भक्ति अहैतुकी अव्यावहिता भगवान पुरुषोत्तम (श्रीकृष्ण) में प्रेम प्रधान सेवा में निहित है। आचार्य स्वयं कहते हैं–

अस्मत्प्रतिपादित श्रय नैर्गुणाः

भगवता प्रतिपादितः। भाग. सुबोधिनी (3, 27, 37)

पुष्टिमार्ग में आचार्यों की सवंश परम्परा मान्य है। यहां अन्य सम्प्रदायों की भांति पीठ प्रधान न होकर आचार्य गृह परम्परा ही प्रचलित है। वर्तमान में पीठों का भी लोक व्यवहार में प्रचलन होने लगा है। पुष्टि सम्प्रदाय में ग्यारह प्रमुख सेव्य स्वरूप एवं प्रधान घर (नाथद्वारा) के साथ अन्य सात घर हैं।

पुष्टिमार्ग में आधार शास्त्र श्रीमद् भागवत गीता है। एक मात्र देव भगवान श्रीकृष्ण हैं। नाम मंत्र– श्रीकृष्ण है तथा एक मात्र सेव्य भगवान देवकी पुत्र श्रीकृष्ण हैं।''

एकं शास्त्रं देवकी पुत्र गीत मेको देवो देवकी पुत्र एव।

मंत्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।

पुष्टिमार्ग एवं आचार्य :

पुष्टिमार्ग में आचार्य गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते हैं। कलियुग में श्रीमद्वल्लभाचार्य द्वारा सन्यास को वर्जित किया गया है–

अतः कलौ न संन्यासः पश्चत्तापाय नान्यथा। (सन्मति निर्णयः)

कलिकाल में ज्ञान की प्राप्ति के लिए सन्यास ग्रहण न करें क्योंकि यह पश्चात्ताप ही कराता है। अतः पुष्टिमार्ग से कर्म मार्गीय सन्यास वर्णित है। पुष्टिमार्ग में आचार्यत्व सभी मूल गृह पुरुष एवं उनके वंशजों में निहित है, ऐसी परम्परा है। साथ में श्रीमद् वल्लभाचार्यजी ने प्रथम साधन सद्गुरु आचार्य के चार लक्षण निर्धारित किये हैं। अन्यथा सद्गुरु के अभाव में जीव का उद्धार होना संभव नहीं है। आचार्य (1) कृष्ण सेवा पर (2) दम्भ रहित (3) भागवत तत्व ज्ञाता (4) एवं वल्लभवंश जन्मा होना चाहिए। यदि ऐसी योग्यता न हो तो मूल आचार्य चरण को ही गुरु मानकर पुष्टिमार्गीय सेवा प्रणाली का अनुसरण करते हुए प्रभु–विग्रह की सेवा करें।

तदभावे स्वयं वाऽपि मूर्तिं कृत्वा हरेः क्वचित् परिचर्यां सदा कुर्यात्।

(निबन्ध 2/228

श्रीमद् वल्लभाचार्य ने वंशज आचार्यों एवं वैष्णवों को यह उपदेश प्रदान किया है ''यदा बहिर्मुखा यूयं भविस्मथ कथंचन, तदाकाल प्रवाहस्था देह चित्तादयोप्युत सर्वथा भक्षयिष्यन्ति युष्मान् इति मतिर्मम।'' (शिक्षा पत्राणि)

भगवत्सेवा से विमुख होने पर काल प्रवाह का ग्रास बनना सुनिश्चित है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

"को कहि सके मिताई, श्रीनाथ साथ रसखान की।"

—श्रीहरिनारायणनीमा, उज्जैन

सौन्दर्य रसिक रसखानजी पूर्व सुकृत के कारण 'रूप–सुधा–माधुरी' की तलाश में मधुर व्रज भूमि में आये। वैष्णवों ने उनको बतलाया था कि ब्रजधाम में घनश्याम विराजते हैं, पहिचान के लिये सौन्दर्य सुधा सिन्धु प्रभु श्रीनाथजी की छबि पधराई है विश्व विमोहन मोहन की मोहिनी छबि रसखान के मन मंदिर में विराज गई है। वृन्दावन की कुंज–निकुंज–यमुना तट पर खोज की, बांके बिहारी मदनमोहन राधा माधव, गोविन्द देव के मंदिरों में ढूंडे किन्तु वह सहज थोड़े ही मिलता है। सौभाग्य से गिरिराज गोवर्द्धन आये प्रियजी पास में विराजते थे वो चित्रजी से श्रीविग्रह का मिलान करते थे। प्रभु गिरिराजधरण श्रीनाथजी के मंदिर में जाने लगे तो पोरिया ने रोक दिया, विरहातुर रसखान ने पक्का मन बना लिया। बिना दर्शन किये यहां से नहीं लौटूंगा। 'गोविन्दकुण्ड' पर तीन दिन बिना अन्नजल लिये रसखान पड़े रहे, उनके प्राण ब्रज जीवन प्रभु श्रीनाथजी के दर्शन के लिये तड़फ रहे थे। करूणा–सिन्धु दैवी जीव जानकर द्रवित हुए और अनुग्रहार्थ गोविन्दकुण्ड पर पधारे वहां रसखान को दर्शन दिये– वह घड़ी रसखान के जीवन में परम आनन्द की प्रदाता हुई– जन्म–जन्म के पुण्यों का उदय हो गया। रसखान निहाल हो गये– छवि में चित्रित स्वरूप की प्रतिछवि थी।

रसमस्त भक्त रसखान श्रीजी को पकड़ने दौड़े, वह दामोदर कोई सहज में थोड़े ही पकड़ने में आता है जब तक भक्त रत्न परीक्षक प्रभुचरण श्रीगुसांईजी जीव को अंगीकार नहीं करते तब तक श्यामसुंदर श्रीनाथजी के अरविन्द सुन्दर चरणों को कौन पकड़ सकता है। कृष्णदासजी ने भी कहा है–

"जे जन चरण आप अनुसरहिं ग्रहि सौंपत श्रीगोवर्धननाथ।"

रानी जसुमति प्राण आधार श्यामलकिशोर गोकुल पधारे और श्रीगुसांईजी से कहा "रसखान दैवीजीव है किन्तु म्लेच्छ योनि में है, इसको अंगीकार करो, जब तक आप इस जीव का समर्पण नहीं कराओगे तब तक मैं न तो इससे बोलूंगा, न तो स्पर्श करने दूंगा और न ही इसके हाथ की धरी सामग्री ही आरोगूंगा। प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य कर श्रीगुसाँईजी गोविन्दकुण्ड पधारे और रसखानजी का 'नाम निवेदन' करवाया। रसखान का हाथ पकड़कर श्रीगुसाँईजी गोपालपुर पधारे। उत्थापन की झांकी कराकर रसखान को महाप्रसाद दिलाया। प्रसाद लेते ही रसखान का अन्तर्बाह्य शुद्ध हो गया रसखान अब रस की खान बन गये। उनका कवि हृदय जागृत हुआ, श्रीजी के अनुराग रंग में रंगे, रसखान की वाणी विविध पद गान में प्रकट हुई– पदों में ब्रज महिमा, ब्रजेश्वर की रूप माधुरी, सुषमा और लीला चिन्तन का वर्णन करने लगे।

अंग्रांकित पद में रसखान प्रभु के प्रति प्रार्थना करते हुए कहते हैं–

"मानुष होऊँ तो वही रसखान,
बसौ ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु होऊँ तो कहा बसु मेरो,
चरों नित नंद की धेनु मंझारन।
पाहन होऊँ तो वही गिरिको,
जो धर्यो कर छत्र पुरंदर कारन।
जो खग होऊँ तो बसेरों करों मिलि,
कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।।"

समूचे पद में कवि श्रीमहाप्रभुजी के सिद्धान्तों का वर्णन कर रहे हैं। वे प्रभु से यही निवेदन करते हैं कि मुझे मनुष्य बनाओ, पशु बनाओ, पत्थर बनाओ, पक्षी बनाओ, चाहे जो बनाओ। ब्रज से सम्बंध बनाये रखो। धन्य हैं रसखान– श्रीयमुनाजी के तट स्थित महावन रमणरेती के थोड़ी पास स्थित छत्री से आज भी रसखान की वाणी गूंज रही है जो हरि भक्तों के भावों को दृढ़ता प्रदान करती है।

रसखान अपने 'जिगर जान मेहबूब' को पाकर धन्य हो गये।

मेरे पुष्टिमार्ग में आत्म कल्याण पथ के पथिकों के प्रति किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है, आचार्य श्री के मत में सृष्टि के विभिन्न भेद भगवान् की दिव्य लीला के उपकरण हैं। भेदों से घृणा की सृजन वल्लभ मत में मान्य नहीं है, यह भारतीय वाङमय का व्यापहारिक स्वरूप है।

हमारे यहां 84/252 वैष्णवों की विमल गाथाओं में मेहाधीया, धोंधी कलावंत, मोहन और चूहड़ा आदि परम भक्तों का गुणगान किया गया है। मुस्लिम भगवद् भक्तों की वंदना में हमारे गौरव बाबू भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने कहा है–

"अलीखान पठान सुता सह ब्रज रखवारे शेख, नबी, रसखान, मीर, अहमद हरि प्यारो निर्मलदास, नजीर, नाजबी बेगम बटी। परिजादी बीबी रस्तो, पदरज नित सिर धारिये।

इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दू वारिये।।"

रसों की खान रसखानजी ने सर्वार्पण से प्रभु का गुणगान किया है। वो कह रहे हैं

"मोहन छबि रसखान लखि, अब दृग अपने नाहिं।।"

उनकी आँखों में मन मोहन की सुन्दर छवि सदा–सदा के लिये बस गई है, अब श्रीजी के सिवाय उन्हें कोई नहीं दिखाई पड़ता। रसखानजी ने अनेक विरहपदों की रचना, बालकृष्ण की बाल लीलाओं का गान और 'प्रेमवाटिका' में सैवयों की सरस प्रस्तुति दी है।

रसखान कवि पर श्रीगुसाँईजी ने अनहद कृपा की है– दर्शनामृत, वचनामृत, चरणामृत तथा प्रेमामृत का पान कराकर उन्हें अमर कर दिये हैं। शताब्दियों से रसरसिक रसमसा थाप रसखान के पद हम वैष्णवों को आत्म परितोष प्रदान कर रहे हैं और 'यावद् चन्द्र दिवा करो' कराते रहेंगे। ।। जय श्रीकृष्ण।।

पुष्टिमार्ग में गणगौर उत्सव

–डॉ. रचना तैलंग, कांकरोली

भारत सांस्कृतिक बहुलता एवं अद्‌भुत सामंजस्य से भरा देश है। यहाँ सिद्धान्त व नियमों की कठोरता के बावजूद कई ऐसे अद्‌भुत उदाहरण देखने को मिलते हैं जिनमें विचित्रता की महक आती है तथा अधिकांश लोग आश्चर्य में पड़ जाते हैं। ऐसी परम्पराओं के अधिकाधिक प्रचार एवं इन परम्पराओं में छिपे रहस्यों को पुनः पुनः प्रकाश में लाने की आवश्यकता होती है। ताकि उनमें छिपे तथ्यों को नवीन पीढ़ी तक भी पहुँचाया जा सके।

गणगौर राजस्थान का प्रमुख त्यौहार है। जो जयपुर, जोधपुर, उदयपुर आदि सभी जगह धूमधाम से मनाया जाता है। नाथद्वारा कांकरोली (राजसमंद) में आज यह राजस्थान का दूसरे नंबर का मेला कहलाता है। इस दिन सुबह नारियां व कन्याएँ गणगौर की पूजा करती हैं। शाम को गणगौर की सवारी निकलती है तथा महिलाएँ व कन्याएँ पतवारी पूजती है जिसका प्रचलन आज कम हो गया है। संध्या के समय गणगौर को पानी पिलाया जाता है और कविता, शायरी व प्रकारान्तर से महिलाएँ गणगौर के समक्ष अपने पति का नाम लेती हैं और लम्बी आयु की दुआ मांगती है। गणगौर पूजन का यह कार्यक्रम पांच दिन चलता था तथा चूंदड़ी, हरी, गुलाबी, काली व केसरिया गणगौर पांच दिन तक मनाई जाती है। इन दिनों महिलाएँ व बालिकाएँ बगीचों में जाकर सुंदर फूलों का चयन कर कलश सजाकर 'सवेरा' बनाकर गीत गाते हुए लाती हैं और घर में शिवजी का पूजन करती हैं। परन्तु बाग–बगीचों के अभाव में यह परम्परा समाप्त प्रायः होती जा रही है। परन्तु गणगौर पूजा का विधान अभी भी चला आ रहा है। इस अवसर पर महिलाएँ अपने गहनों की पूजा भी करती हैं। गणगौर अर्थात् गण एवं गौरी या शिव एवं पार्वती। ये पुरुष व प्रकृति के परिचायक हैं। पार्वती सुहाग की प्रतीक हैं तथा शिवजी एक श्रेष्ठ पति के रूप में माने जाते हैं। परन्तु पुष्टिमार्ग के मर्मज्ञ जानते हैं कि इस मत में अन्याश्रय वर्जित है तो गणगौर का त्यौहार इतनी धूमधाम से क्यों मनाया जाता है? यह हमारी विशालहृदया भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का एक अद्‌भुत नमूना है। यहां कृष्ण के उपासक भी गणगौर धूमधाम से मनाते है।

गणगौर भारतीय नव संवत्सर का पहला बड़ा त्यौहार है। चैत्र शुक्ल तृतीया को मनाया जाने वाला यह त्यौहार पांच दिन चलता है। वैसे तो राजस्थान में गणगौर वर्षों

से मनाई जाती है। क्योंकि यहां के राजपूत राजा शिव एवं विशेषतः शक्ति के उपासक हैं। आज से साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व जब श्रीनाथजी एवं श्रीद्वारकाधीशजी के विग्रह नाथद्वारा एवं कांकरोली में पधराए गये तब से ही यहां गणगौर की पूजा का प्रचलन आरंभ हुआ।

जैसा कि सर्वविदित है। ब्रज में मुस्लिम प्रशासकों के आतंक के कारण उदयपुर (मेवाड़) के राजा–महाराणा राजसिंह ने पुष्टिमार्ग के पीठाधीशों को राजनीतिक संरक्षण का आश्वासन दिया। राजसिंहजी के पिता श्रीजगतसिंहजी ब्रजयात्रा के दौरान तृतीय पीठाधीश श्रीबालकृष्णलालजी प्रथम (कांकरोली वाले) श्रीद्वारकाधीश के परम भक्त बन गये थे। उन्होंने अपने गुरु को आसोटिया (कांकरोली) गांव भेंट किया जहां कालान्तर में द्वारकाधीशजी बिराजे उसके एक वर्ष बाद श्रीनाथजी भी यहां पधारे। मेवाड़ के महाराणा राजसिंहजी ने कांकरोली व नाथद्वारा के महाराजश्री को राजस्व, न्याय, धर्म, भूमि के अधिकार दिये एवं कांकरोली व नाथद्वारा को ठिकाना घोषित किया। गुरु के रूप में महाराणा इन पीठाधीशों को सवारी आदि में अपने से प्रमुख स्थान देते। इनकी चरण वंदना करते एवं अपना गुरु गृह मानते। राजकीय परामर्श भी करते थे।

शाक्त होते हुए भी मेवाड़ के राजाओं ने पुष्टिमार्ग में दीक्षा ली व वैष्णव धर्म अपनाया इसी भावना की कद्र करते हुए नाथद्वारा कांकरोली के साथ–साथ अन्य पुष्टिमार्ग के मंदिरों में मेवाड़ के प्रमुख त्यौहार गणगौर को भी धूम–धाम से मनाया जाने लगा।

गणगौर की सवारी में गणगौर के पश्चात् श्रीद्वारकाधीश प्रभु व श्रीनाथजी की महारास की छवि पधराई जाती है। मंदिर में भी गणगौर का त्यौहार मनाया जाता है। बल्कि कांकरोली नाथद्वारा में तो गणगौर की सवारी ही मंदिर के तत्वावधान में निकलती है आज भी जब सारी जिम्मेदारी नगर पालिका ने ली है फिर भी मंदिर से सवारी नगाड़ा, बैण्ड, पालकी, सभी उपलब्ध कराए जाते हैं। हरे गुलाबी वस्त्र ठाकुरजी भी धराते हैं। मंदिर में झाले व घूमर लगाई जाती है। महिलाएँ त्यौहार के अनुरूप वस्त्र धारण करती हैं। और तो और ठाकुरजी को भी इन दिनों गणगौर्‍या लाल के नाम से पुकारा जाता है। आज मंदिर ही नहीं पुष्टिमार्ग के सभी परिवारों व पुष्टिमार्ग के मानने वालों में सारे देश में गणगौर मनाई जाती है।

यद्यपि गणगौर राजस्थान का त्यौहार है पर पुष्टिमार्ग ने इसे राष्ट्रीय त्यौहार बना दिया। भारतीय सांस्कृतिक व धार्मिक सांमजस्य का यह अनूठा त्यौहार है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

प्रभु का वास्तविक स्वरुप

–प्रो. श्रीललितशंकर शर्मा (चिंतनखण्ड से साभार)

सत्यं शिवं सुन्दरम् ही प्रभु का वास्तविक स्वरूप है। सच्चिदानन्द इसी का पर्याय है। प्रभु के स्वरूप में एक अलौकिक आकर्षण है। इसी आकर्षण शक्ति के कारण उसे कृष्ण भी कहा जाता है। प्रभु का स्वरूप रमणीय है, उनके स्वरूप में सभी रमण कर सकते हैं, इसलिए उन्हें राम कहा जाता है। प्रभु का स्वरूप मंगलमय एवं सभी के लिए कल्याणकारी है इसलिये उन्हें परम शिव भी कहा जाता है। अपनी अनन्त लीलाओं एवं भक्तजन की भावना के अनुसार उनके अनन्त स्वरूप हैं उनके प्रत्येक स्वरूप में एक दिव्य आकर्षण अवश्य रहता है।

इसी प्रकार प्रभु के अनन्त नाम हैं। उनका प्रत्येक नाम मंगलकारी है, प्रभु ही अपने अनुग्रह से भक्तजन के हृदय में अपने ही किसी स्वरूप विशेष तथा नाम विशेष के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर देते हैं। भक्त की भावना के अनुसार ही प्रभु अपने स्वरूप एवं नाम से भक्त का सम्बन्ध सुदृढ़ कर देते हैं। भक्त का प्रभु के जिस नाम एवं स्वरूप से अपनत्व स्थापित हो जाता है, प्रभु का वही स्वरूप एवं नाम भक्त का प्रिय बन जाता है।

प्रभु का कैसा भी स्वरूप क्यों न हो, उस स्वरूप में अपने प्रिय भक्तजन के प्रति वात्सल्य अवश्य समाहित रहता है, इसीलिए प्रभु को भक्तवत्सल भी कहा जाता है। भक्तवत्सलता के कारण ही प्रभु अपने भक्तजन के प्रिय भाजन बनते हैं। प्रभु अपने भक्तजन को अपने स्वरूप में लीन नहीं करते केवल उनके चित्त को ही अपने स्वरूप में लीन करते हैं। इसी कारण भक्तजन लीला का रसास्वादन करते हुए मुक्ति तक को सर्वथा तुच्छ मान कर, उसकी ओर आकर्षित नहीं होते। प्रभु का प्रिय भाजन बन कर भक्त सतत उनके सानिध्य में रह कर लीला परिकर के रूप में अपनी स्नेहमयी सेवा प्रभु को अर्पित करते रहते हैं अथवा प्रभु इच्छा से लीला सहचर बन कर प्रभु की दिव्य लीलाओं का रस पान करते रहते हैं।

वस्तुतः प्रभु के सानिध्य का सायुज्य का, उनके साहचर्य का आनन्द अलौकिक है। यह परमानन्द प्रभु के प्रिय भक्तजन के अतिरिक्त ब्रह्मादिक के लिए भी अत्यंत दुर्लभ है। परमात्मा का पुष्टिवर्द्धन–स्वरूप भी भक्तजन के स्नेह की पुष्टि एवं भक्तिभाव का संवर्द्धन करने वाला है तथा भक्तवत्सल होने से इस स्वरूप में प्रभु के सभी स्वरूपों का समाहार है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

पुष्टिमार्ग के मन्दिरों में आशौच–विचार

–उपाध्याय ब्रजभूषण भट्ट, प्रधान उपाध्याय, श्रीनाथजी मंदिर नाथद्वारा

पुष्टिमार्ग के मन्दिरों को प्रायः घरों के रूप में भी सम्बोधित किया जाता है। मन्दिरों की सेवा में पवित्रता का विशेष ध्यान रखा जाता है। पुष्टिमार्ग में पवित्रता को अपरस के नाम से जाना जाता है। अपरस में ही रहकर सेवा कर्मी विग्रहों की राग, भोग, श्रृंगार की सेवा करते हैं। मुंह पर पट्टी बाँधकर भोग–सामग्री की सिद्ध–सेवा की जाती है। सेवा कर्मी स्नान के बाद पवित्र रोज नये अपरस के वस्त्र धारण करते हैं तथा सेवा के समय किसी अन्य व्यक्ति से स्पर्श नहीं करते हैं। आशौच–अवधि में कोई भी सेवा कर्मी सेवा का अधिकारी नहीं है। आशौच की पूर्ण निवृत्ति के पश्चात ही सेवा कर्मी सेवा–कार्य में प्रविष्ट हो सकते हैं। सेवा में प्रायः बाल–भाव, सखा भाव एवं युगल–भाव की प्रधानता, अवलोकित की गयी है। आशौच–निवृत्ति के बाद जनेऊ, कण्ठी नवीन धारण करनी चाहिए।

आशौच को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है :–

1. सामान्य (प्रकीर्ण) आशौच
2. जनन– आशौच
3. मरण– आशौच

सामान्य–आशौच प्रायः जीवन चर्या से सम्बन्धित है। जीवन चर्या में स्पृशास्पृश, भक्ष्याभक्ष्य, पीतापीत ज्ञातां ज्ञात दोष आना स्वाभाविक हैं। सेवाकर्मियों को इनका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

सामान्य (प्रकीर्ण) आशौच :–

जनन–आशौच में स्पर्शा स्पर्श दोष नहीं माना जाता है, लेकिन पीतापीत, भक्ष्याभक्ष्य दोष मान्य है। मरण–आशौच में सूतकी के आसन पर भी नहीं बैठते हैं। जनम–आशौच को पिण्डू और मरण–आशौच को सूतक के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। मरण–आशौच में सूतकी के घर पक्वान्न ग्रहण करने एवं जल आदि पान करने पर सेवा कर्मियों को प्रायश्चित करने का विधान है। रेल व सामान्य बस द्वारा देशान्तर में यात्रा करने पर प्रायश्चित कर ठाकुरजी की सेवा करनी चाहिए। प्रत्यंतर देश गमन पर पूर्वोत्तराङ्ग

प्रायश्चित का विधान है। जनन–आशौच में जब तक मंगल स्नान न हो, तब तक स्पर्शादि दोष है। आशौच–अवधि तक मानसी अर्ध्यान्त तक संध्या का विधान है। देव–कार्य, पाठादि, जपादि निषिद्ध है। हवन–कार्य भी निषिद्ध है। सूतकी को दर्शन का भी निषेद है। खड़ाऊँ–सपाट आदि भी पहन कर सेवा करना उचित नहीं है। सेवा में सिर्फ धोती बगल–बन्दी ही पहनी जाती है। बनियान–चड्डी आदि पहनना निषिद्ध है। कारीगर, डाक्टर–वैद्य, नौकर–नौकरानी, नाई, राजा–शासक शासकीय कर्मचारी आदि सद्यः शौच माने गये हैं। जब तक ये अपने कार्य में संलग्न रहते हैं तब तक शुद्ध हैं। कार्य के पहिले और कार्य के बाद में ये अशुद्ध माने गये हैं। इनकी शुद्धि आपत्काल में मानी गयी है। व्रत, यज्ञ, विवाह, उपनयनादि प्रारम्भ करने के बाद आने वाला सूतक या पिण्डरू, कर्ता (सपत्नि) के लिए मान्य नहीं होता। और यह सिर्फ कर्मकाल तक ही है। कर्म का प्रारम्भ, ऋत्विज–वरण, व्रत, दान, जप, होम, पूजा आदि में संकल्प, विवाह, यज्ञोपवित आदि में नान्दी श्राद्ध–संकल्प, श्राद्ध–कर्म में ब्राह्मण–निमंत्रण व रसोई (पाक) की सम्पन्नता, (वन जाना) तीर्थ यात्रा में यात्रा–प्रारम्भ करना माना गया है। जब तक कर्त्ता कर्म में प्रविष्ठ रहता है तब तक ही शास्त्रों में शुद्धि मानी गयी है, उस अवधि के बाद वह अशुद्ध हो जाता है। अन्य परिवार के सदस्यों के लिए यह सिद्धान्त लागू नहीं है। सिर्फ कर्त्ता और उसकी पत्नि के लिए ही यह नियम मान्य है। अन्य कुटुम्बी जन आशौची रहते हैं। पारक्या शौच में पुरुष (पति) जिस वर्ण का होता है, उसी वर्ण का आशौच (पिण्डरु–सूतक) मानना चाहिए। अग्नि होत्री के दाह के पूर्व तक आशौच नहीं लगता है। शूद्र के शव का वहन ब्राह्मण को यथा सम्भव नहीं करना चाहिए। सजाति व उच्च वर्ण में शव अनुगमन करने पर सचैल स्नान से शुद्धि मानी गयी है। यदि कोई व्यक्ति (उच्च वर्ण का) हीन वर्ण के शव का अनुगमन करता है, तो एक रात्रि के बाद शुद्धि मानी गयी है। अस्थि–संचयन, पहिले, दूसरे, तीसरे, चौथे, सातमें या नौ मे दिन करना चाहिए। गीली अस्थि–स्पर्श पर स्नान से शुद्धि होती है और सूखी अस्थि–स्पर्श पर 3 आचमन करने पर शुद्धि मानी गयी है। अपनी जाति, वर्ण व लोक परम्परा के अनुसार वपन कार्य कराना चाहिए, जिससे आशौच की पूर्ण निवृत्ति हो सके।

नव रात्रि में यदि आशौच (जनम या मरण) आ जाय, तो घट स्थापन, पूजनादि कर्म ब्राह्मण से कराने चाहिए। उपवास आदि स्वयं करे। रजस्वला स्त्री स्वयं उपवास

कर पूजादि अन्य के द्वारा करावे। आशौच निवृत्ति के बाद पारणा, उत्थापन कर ब्राह्मण–भोजन व दक्षिणा–दानादि दें। रजस्वला स्त्री भी शुद्ध होकर पारणा कर दानादि दे।

रजस्वला स्त्री को तीन रात्रि तक कोई स्पर्श न करे। रजस्वला स्त्री भी तीन रात्रि तक तेल, अभ्यंग, अंजन लगाना स्नान करना आदि न करे। दिन में सोना, अग्नि–स्पर्श दंतधावन, सूर्य–दर्शन आदि भी वर्जित है। धरती पर सोवें। छोटे तांबे व लोहे के पात्र से जल नहीं पीवे। यदि रजस्वला स्त्री को नैमित्तिक स्नान करना हो, तो गोता लगाकर नहीं करना चाहिए। पात्रान्तरित जल से स्नान करना चाहिए। यदि रजस्वला से स्पर्श हो जाय तो स्नान करना अभीष्ट है। पंचगव्य भी पीना चाहिए। चौथे दिन रज की निवृत्ति पर पति की सेवा–शुश्रूषा कर सकती है। पाँचवे दिन रजस्वला शुद्ध मानी गयी है और देव–पितृ (श्राद्ध) कार्य कर सकती है।

बड़ेन के मरण पर वपन–कार्य छोटेन कूं करानो अभीष्ट है। फिर जाति, लोक रीति के अनुसार वपन–कार्य करना चाहिए। यह मान्यता है कि जब तक सिर के बाल रहेंगे, तब तक उसे सूतकी माना जाता है। पूर्ण शुद्धि नहीं मानी गयी है। कर्त्ता (मरण–कर्म करने वाला) को वपन कार्य अनिवार्य है।

आशौच के सम्बन्ध में अनेक मत–मतान्तर हैं, जिससे भ्रान्तियाँ होना स्वाभाविक है। प्रकीर्ण–आशौच का परिक्षेत्र बहुत विस्तार लिए हुए है। सम्पूर्ण जीवनचर्या से सम्बन्धित है। इसलिए वर्तमान परिपेक्ष में संक्षिप्त सारभूत उल्लेख किया है। विस्तार के लिए विभिन्न ग्रन्थों (धर्म सिन्धु, निर्णय सिन्धु, मिताक्षरी, मनुस्मृति, पाराशर स्मृति, शुद्ध–ममूख, षड्शिति, आशौच निर्णय, याजुषान्हिक नवकम आदि) का अवलोकन आवश्यक है। विभिन्न विचारकों (भट्टोजी दीक्षित, माधवाचार्य विष्णु स्वामी, वृहस्पति, प्रचेता आदि) के मतों पर भी चिन्तन–मनन अपेक्षित है। यथा सम्भव मार्ग दर्शन (आशौच सम्बन्धी) देने की चेष्टा की है। जनम व मरण–आशौच अन्य प्रकाशन में प्रकाशित करने का प्रयास करेंगे। किमधिकम् शुभम्।।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

पुष्टिमार्ग और गीता

—श्रीश्यामसुन्दर गिरनारा

आज गीता जयन्ती है। पुष्टिमार्गीय वैष्णवों ने गीता के महत्त्व को करीब करीब पूरा भुला दिया है जबकि महाप्रभुजी ने जगह जगह अपने कथन की पुष्टि करने के लिये गीता के श्लोकों को उदृत किया है। या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।' जगत् में सर्वत्र महापुरूषों की वाणी को आदर दिया जाता है परन्तु अगर वाणी स्वयं भगवान् की ही हो तब तो कहना ही क्या? जब महाप्रभुजी ने उसे अपना समर्थन दिया हो तब वैष्णव का ध्यान उस ओर अवश्य जाना चाहिये जैसे कहा गया है महाप्रभुजी के संबंध से उन तीर्थों में जाना चाहिये जहां वल्लभ स्वयं पधारे हैं। इसलिये वैष्णव मात्र को अन्य पुष्टिमार्गीय ग्रंथों के साथ गीता का भी अनुशीलन करना चाहिये, केवल गीता पाठ पर्याप्त नहीं है। यह ठीक है कि गीता में भगवान् ने विभिन्न कल्याणकारी मार्गों का भी विवेचन किया है अतः हो सकता है वैष्णवों को उसमें रूचि न हो तो ऐसी स्थिति में गीता में से उन श्लोकों को ढूंढ लेना चाहिये जिनसे पुष्टिभाव दृढ़ होता हो। उदाहरण के लिये एक श्लोक है—

'सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।'

'सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरण में आजा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा, चिन्ता मत कर।।१८/६६।।'

किसी को यह मर्यादामार्गीय लग सकता है परन्तु इसका अर्थ पुष्टिमार्ग के अनुसार किया जाना चाहिये। वैष्णव मात्र का एक ही धर्म है— प्रभु की शरण में जाना। अन्य सभी धर्मों के आश्रय का त्याग करना चाहिये। सभी धर्मों में लौकिक धर्म भी आ गया जिसके आश्रय का त्याग प्रायः कोई भी नहीं करता तथा दूसरे धर्मों के प्रति अन्याश्रय का भय दिखाकर उनका त्याग करने की बात कही जाती है। लौकिक धर्म में धन—मान प्रतिष्ठा—सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति— घर परिवार से जुड़ा दायित्व आदि बहुत बातें आ जाती हैं जिनके लिये लौकिक मनुष्यों का आश्रय भी करना पड़ता है। वैष्णव उसके बारे में गंभीरता से नहीं सोचते, वे सिर्फ अन्य धर्म—सम्प्रदाय के त्याग की बात सोचते हैं जो ज्यादा कठिन नहीं है। फिर भगवान् कहते हैं— 'मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्तकर दूंगा, चिन्ता मत कर।' क्या पुष्टिमार्ग में भी कोई पाप है? पाप सिर्फ एक ही है— प्रभु पर अविश्वास जिसके लिये वल्लभ भी आज्ञा करते हैं—

'अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः।'

अविश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि यह निश्चय बाधक ही है। पुष्टिमार्ग में एक मात्र समाधान भगवान् की शरणागति से संभव होता है, अब अगर भगवान् पर ही भरोसा न हो तो समाधान कैसे हो सकता है? तथापि अविद्या जन्य अहंता—ममता के

प्रभाव से कभी चिन्ता–संशयादि होते हों तब भी भगवान् का ही आश्रय करना चाहिये।

स्पष्ट कहा है– 'विवेकधैर्यभक्त्यादि–रहितस्य विशेषतः।
पापासक्तस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम।।

'विवेक, धैर्य, भक्ति आदि भगवान् के धर्मों से रहित, पापों में अत्यंत आसक्त तथा अत्यन्त दीन मेरे लिये श्रीकृष्ण ही रक्षक हैं। 'वैष्णव प्रायः इसका पाठ ही करते हैं लेकिन वे इसे निजी जीवन से जोड़कर नहीं देखते। माना सारी बाधाएं हैं फिर भी 'कृष्ण एव गतिर्मम' भगवान रक्षक हैं इस भाव को महाप्रभुजी ने सुरक्षित रखा है। ऐसे में फिक्र कैसी? फिर भगवान् भी कहते हैं– मोक्षयिष्यामि मा शुचः। मोक्ष कैसा पुष्टि मार्ग में? महाप्रभुजी ने चतुःश्लोकी में पुष्टिमार्गीय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का वर्णन किया है। सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः। स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन।। एवं सदास्म कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति। प्रभुः सर्व समर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत्।। यदि श्रीगोकुलाधीशो घृतः सर्वात्मना ह्रदि। ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वै दि कैरपि।। अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वर पादयोः। स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः।। क्या भगवान् के स्मरण–भजन से मुक्ति मिलती है? बंधन मिलता है– किसका? स्मरण–भजन का। वही मुक्ति है। अतः बंधन से छूटने के लिये स्मरण–भजन नहीं करना चाहिये अपितु बंधन में रहने के लिये स्मरण–भजन करना चाहिये। जैसे महाप्रभुजी ने विवेक–धैर्य आश्रय ग्रंथ में कहा है– मृत्युपर्यन्त त्रिविध कष्टों को सहना ही धैर्य है। इसका अर्थ है कष्टों से छूटने के लिये धैर्य नहीं रखना चाहिये अपितु कष्टों को सहन करने के लिये धैर्य रखना चाहिये। कष्टों से छूटने के लिये धैर्य रखने जायगा तो धैर्य कभी सिद्ध नहीं होगा लेकिन कष्ट सहने के लिये धैर्य रखेगा तो धैर्य सिद्ध हो जायगा। चूंकि सभी कष्ट क्षण भंगुर होते हैं अतः निरंतर धैर्य के अभ्यास से चित्त को स्थायी रूप से प्रभु में पिरोना संभव हो जाता है। चेतस्तत्प्रवणं सेवा।

गीता में बहुत श्लोक हैं जो पुष्टिमार्गीय भावना के उत्कर्ष में सहायक हैं। जैसे– ईश्वरः सर्वभूतानां ह्रद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। अर्थात् हे अर्जुन! ईश्वर सम्पूर्ण प्राणियों के ह्रदय में रहता है और अपनी माया से शरीर रूपी यन्त्र पर आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियो को भ्रमण कराता रहता है।।' श्रीवल्लभ कहते हैं– 'सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति।' भगवान् सबके ईश्वर अर्थात् सबके नियामक हैं एवं सबके आत्मरूप हैं, वे अपनी इच्छा से यथोचित ही करेंगे। अस्तु–

गीता का बारहवां अध्याय भक्तियोग है जिसमें भगवान् ने अपने अत्यंत प्रिय भक्तों के गुण बताये हैं– 'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करूण एव च। निर्ममो निरहंकारः समदुःख सुखःक्षमी।।' आदि। पुष्टिमार्गीय वैष्णवों को उन गुणों का परिचय प्राप्त करना चाहिये तथा उनके उत्कर्ष हेतु मन में से हीनता का त्यागकर प्रभु की शरण में जाना चाहिये। दीनता का प्रयत्न करना ठीक नहीं, क्योंकि दीनता के प्रयत्न से हीनता को बढ़ावा मिलता है। प्रभु के माहात्म्य को जानकर प्रभु की शरण में रहने से दीनता अपने आप आती है। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

शक्ति–स्वरुप–निरूपण

–प्रो. श्रीललितशंकर शर्मा (काव्यखण्ड से साभार)

एक ही शक्ति अनादि जिसकी जगत में आश है।
वात्सल्य अक्षय कोष निरुपम चेतना की प्यास है।।
लक्ष्मी वही दुर्गा वही गिरिजा सरस्वती कालिका।
चण्डी वही अम्बा वही करुणामयी प्रतिपालिका।।
आह्लादिनी सुखदायिनी वही प्रेम शक्ति राधिका।
मातेश्वरी वरदायिनी वही सर्वसिद्धि साधिका।।
वात्सल्य देकर अज्ञ का भी कर रही उद्धार है।
पुष्टिवर्द्धन शक्ति बन करती सदा विस्तार है।।

भावार्थ : परमशक्ति एक ही है अनादि है। यही संपूर्ण जगत के कण कण में निवास कर रही है। शक्ति मातृ स्वरुपा है अतः संसार के प्रति इसका वात्सल्य कभी समाप्त नहीं होता। यही चेतना में पूर्णत्व की प्यास जगाकर प्रभु की ओर उन्मुख करती है। यही महालक्ष्मी है जो सभी को समान भाव देकर एकता के सूत्र से जोड़ती है एवं विषम भाव देकर सबको अलग अलग कर देती है। वही संसार रुपी दुर्गम दुर्ग से पार कराने वाली दुर्गा है वही तप की साकार प्रतिमूर्ति हिमपुत्री गिरिजा है जो समस्त पतिव्रता स्त्रियों में अग्रणी है, वही विद्या एवं बुद्धि की अधिष्ठात्री सरस्वती है एवं वही भक्तजन को अपना वात्सल्य लुटाने वाली करुणामयी अम्बा है जो प्राणीमात्र का पालन करने वाली है।

यही आत्मानन्द एवं परमानन्द प्रदान करने वाली सभी प्रकार के सुख देने वाली, हृदय को आह्लादित करने वाली महाभाव स्वरुपा प्रेम शक्ति राधिका है यही ममतामयी माता तथा सर्व सिद्धि देने वाली एवं सभी प्रकार के वर प्रदान करने वाली है।

यही महाशक्ति निरन्तर अपना वात्सल्य लुटा कर अज्ञानियों का भी उद्धार कर रही है एवं बहिरंग शक्ति बनकर निरन्तर अभ्युदय एवं निःश्रेयस प्रदान कर रही है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

''पुष्टिमार्ग में संक्रांति उत्सव''

—श्रीगोपालदास व. नीमा, इन्दौर

सूर्य के उत्तरायण प्रवेश के साथ स्वागत– पर्व के रूप में मकर संक्रांति का उत्ससव मनाया जाता है। वर्ष भर में बारह राशियों– मेष, वृषभ, मकर इत्यादि में सूर्य के बारह संक्रमण होते हैं और जब सूर्य धन राशि को छोड़कर मकर राशि में प्रवेश करता है, तब मकर संक्रांति होती है। सूर्य का उत्तरायण प्रवेश अति शुभ माना गया है। महाभारत में उल्लेख मिलता है कि भीष्म शरशैया पर लेटे हुए तब तक शरीर त्याग को रोके रहे, जब तक उत्तरायण का आरंभ नहीं हुआ।

वेदों में वर्णित भगवान आदित्य तेजस्वी हैं, तांबई रंग के है और सात घोड़ों के रथ पर सवार हैं। एक ही सूर्य विश्व का प्रभु है और एक ही उषा विश्व को प्रकाशित करती है।

पुष्टिमार्ग में तिल की सामग्री श्रीनाथजी अरोगते हैं। प्रभु का सुख का विचार करते हुए ही तिल की शक्कर की एवं गुड़ की सामग्री में यह भावना है कि यह सामग्री ऊष्ण होने से शीतकाल में प्रभु को लाभप्रद है। तिल की सामग्री में एक तिल दूसरे तिल के निकटतम है ऐसे ही प्रभु भक्त को अपनी निकटता (समीपता) प्रदान करते हैं। अंतर्यामी रूप से श्रीनाथजी प्रत्येक जीव के संग रहे हैं। उनकूं भूल के औरन सूं प्रेम करनो बड़ी भूल है। राजभोग दर्शन में प्रभु के सन्मुख नाना विध के दान होते हैं एवं द्विज को दान होने पर असीस वचन भी होता है। सायंकालीन दर्शन में श्रीनाथजी के सन्मुख संध्या आरती एवं सेन दर्शन में पतंग उड़ाए के पद का गान होता है। ''कान्ह अटा चढि चंग उड़ावत हैं। अपुने आंगन हू ते हेरो, लोचन चार भये नंदनंदन काय कटाक्ष भयो भटू मेरो।।१।। कितो रही समुझाय सरवीरी हटक्यो न मानत बहुतेरो।। ''नंददास'' प्रभु कब धों मिले हैं, ऐचत डोर किधों मन मेरो।।२।।

भारतीय संस्कृति में इस पर्व का विशेष महत्व है। उत्तरायण में प्राण त्यागने वाले की ऊर्ध्वगति होती है, उसे गोलोकवास की प्राप्ति होती है। तिलकी सामग्री एवं खिचड़ी, वस्त्र दान, सुहाग की बिन्दियों, चांदी के अलंकार (पायजेब इत्यादि) चूडियों, नकदी का दान अपनी क्षमता के अनुसार होता है। तिल की भोग धरी प्रसादी लेना भी स्वास्थ्य प्रद है।

गो सेवा का विशेष महत्व है। गुड़, दलिया विशेष प्रकार से बनाकर गायों को खिलाया जाता है। तीर्थ स्थानों पर विशेष रूप से जाया जाता है। एवं पवित्र नदियों (गंगा, यमुना, त्रिवेणी संगम (प्रयाग) नर्मदा, शिप्रा आदि) में स्नान कर दान देकर एवं श्राद्ध भी किए जाते हैं। पतंग मेला और प्रतियोगिता इस उत्सव पर होती है। अहमदाबाद का पतंग मेला विख्यात है, जिसमें कई विदेशियों को भी इसका आनंद लेते हुए देखा गया है। इस प्रकार यह उत्सव अलौकिक दृष्टिकोण से धर्म, अर्थ, काम एवं पुष्टिमार्गीय मोक्ष को प्रदान करने वाला है, जिसका वर्णन श्रीवल्लभाधीश महाप्रभु ने चतुःश्लोकी में वर्णन किया है। ''सर्वदा सर्व भावेन भजनीयों वृजाधीपः''।

वायुपुराण के अनुसार– मकर संक्रांति के दिन ब्रह्म मुहूर्त में स्नान कर दूर्वा, दधि, मक्खन, गोबर, यव, रक्त चंदन, लाल फूल, जल सहित कलश संवत्सौ, गौ बेल, मृतिका, धान्या को पीपल के वृक्ष को स्पर्श कराकर दोनों हाथ को आकाश मंडल की ओर उठाकर सूर्य को प्रणाम करना चाहिए।

ब्रह्मांड पुराण के अनुसार– यशोदा मां ने मकर संक्रांति के अवसर पर दधि मंथन कर दान किया था। तभी उन्हें पुत्र के रुप में स्वयं श्रीकृष्ण भगवान प्राप्त हुए थे।

धर्म सिन्धु ग्रंथ के अनुसार– संक्रांति पर्व के दिन सफेद तिल से देवताओं का तथा काले तिल से पित्तरों का तर्पण करना चाहिए। मकर संक्रांति वाले दिन शिवलिंग पर शुद्ध घी का अभिषेक करने से महाफल प्राप्त होता है। इस दिन शंकरजी के मंदिर में तिल्ली के तेल के दीये अवश्य जलाना चाहिए।

मकर संक्रांति के दिन खिचड़ी गुड़, तिल्ली दान, स्नान और यज्ञ का विशेष महत्व है। शास्त्रों के अनुसार इस दिन दिया गया दान इस जन्म एवं अगले जन्म में करोड़ों गुना होकर मिलता हैं

संक्रांति के दिन तिल का उपयोग छै प्रकार से किया जाता है अर्थात तिल का उबटन, जल में मिले तिल से स्नान, तिल से हवन, तिल मिश्रित जल को पीना, तिल का दान, तिल को खाना चाहिए। तिल्ली को ग्रंथों में पापनाशक बताया है। संक्रांति से ही सूर्य उपासना प्रारंभ करना शुभ फलदायक है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

अन्याश्रय

–श्रीप्यारेलाल पारीख, भीलवाड़ा

श्री महाप्रभुजी एवं श्रीगुसांईजी ने अन्याश्रय शब्द का प्रयोग किया था। इस शब्द का अर्थ जो वर्तमान में हम मान रहे है कदापि नहीं था। आप श्री के अनुसार श्रीनाथजी में सूरदासजी की तरह "दृढ़ इन चरणन् के रो भरोसो" रखना चाहिये पर अन्य देवी देवताओं का सम्मान न करना एवं उनके सामने नतमस्तक न होना आशय कदापि नहीं था। हमें श्रीनाथजी में दृढ़ भरोसा एवं विश्वास रखना ही चाहिए पर सम्मान सभी का करना चाहिए। मेरा मानना ही नहीं पर पूरा विश्वास है कि श्रीठाकुरजी ने बिना गुरु किसी को अपनाया या स्वीकार किया है तो वह श्रीमहादेव है। मेरा निश्चित मानना है कि हमारे श्रीठाकुरजी के प्रथम भक्त श्रीमहादेव ही है। हमें पता है कि श्रीठाकुरजी के जन्म के समय श्रीमहादेव आपके दर्शन करने पधारे थे पर मां श्रीयशोदा ने दर्शन कराने से मना कर दिया। श्रीमहादेव बिना दर्शन जाने लगे तो श्रीठाकुरजी ने रुदन प्रारम्भ कर दिया। मां के दर्शन देने की स्वीकृति के पश्चात रोना बंद किया एवं दर्शन दिये। इस प्रकार श्रीमहादेव का महारास में शामिल होना भी हम जानते है। श्रीनाथजी के श्रीनाथद्वारा पधार ने के साथ घाटी पर बिराजे श्रीमहादेव एवं विट्ठलनाथ मार्ग पर बिराजित श्रीमाताजी भी उनके साथ श्रीनाथद्वारा पधारे। आज भी राजभोग की माला बोलने के पश्चात् दोनों को खबर दी जाती है कि राजभोग के दर्शन खुलने वाले है। भाव यह है आप दोनों दर्शन को पधारे। श्रीनाथजी को जब ये इतने प्रिय है तो उनके सामने नतमस्तक होने से श्रीनाथजी निश्चित प्रसन्न होगे। आज भी गणेश चतुर्थी पर श्रीकृष्ण भण्डार में श्रीगणेशजी का पूजन होता है। दशहरे के रोज श्रीनाथजी धनुष बाण धराते है एवं मन्दिर में अस्त्र शस्त्र पूजा की जाती है। मैं यहां नन्ददासजी एवं उनके बड़े भाई तुलसीदास के बारे में नन्ददासजी की वार्ता का प्रसंग बताना चाहता हूं। हम सब जानते है कि तुलसीदासजी राम भक्त थे एवं श्रीराम के अलावा किसी को भी नमस्कार नहीं करते थे। तुलसीदासजी चाहते थे कि नन्ददासजी भी श्रीराम की उपासना करे। पर श्रीनाथजी को तो नन्ददासजी को अपनी शरण लेना था। नन्ददासजी श्रीद्वारका जाते हुए ब्रज आये और श्रीनाथजी में इतने रम गये की घर लौटना ही भूल गये। तुलसीदासजी नन्ददासजी को ढूढ़ते हुये श्रीगोवर्धन आये और नन्ददासजी के

साथ श्रीनाथजी के दर्शन किये पर तुलसीदासजी ने श्रीनाथजी को दण्डोत नहीं की। नन्ददासजी को बहुत दुखः हुआ एवं उन्हें लगा कि तुलसीदासजी उनके ठाकुरजी का अपमान कर रहे है। नन्ददासजी ने ठाकुरजी से प्रार्थना एवं निवेदन किया कि प्रभु आप जब तक श्रीरामचन्द्र के रूप में दर्शन नहीं दोगें तब तक ये दण्डोत नहीं करेंगे। हम सब जानते है कि श्रीजी बाबा ने धनुष बाण धारण कर श्रीराम के रूप में दर्शन दिये तब तुलसीदासजी ने साष्टांग दण्डोत की। इसी प्रकार नन्ददासजी अपने बड़े भाई को श्रीगुसांईजी के पास ले गये। वहां पर भी यह हुआ कि तुलसीदासजी ने परमदयाल श्रीगुसांई को दण्डोत नहीं की। तुलसीदासजी ने नन्ददास को कहा, जैसे दर्शन श्रीगोवर्धन पर कराये वैसे यहां कराओं। तब नन्ददासजी ने श्रीगुसांईजी से विनती की यह मेरे बड़े भाई तुलसीदासजी है। यह श्रीरामचन्द्रजी के बिना और कहीं नहीं नमते है। तब श्री गुसांईजी ने तुलसीदासजी से कहा बैठों। उन दिनों गुसांईजी के पांचवे पुत्र श्रीरघुनाथजी का विवाह हुआ था। श्रीगुसांईजी ने कहा श्रीरामचन्द्रजी (श्रीरघुनाथजी) तुम्हारे सेवक आये है इनको दर्शन दो। हम सब जानते है श्रीरघुनाथजी ने तथा श्रीजानकी बहुजी ने श्रीरामचन्द्र तथा श्रीजानकी का स्वरूप धर कर दर्शन दिये तभी तुलसीदासजी ने साष्टांग दंडवत की। मेरे कहने का अर्थ आप सब समझ सकते हैं।

वार्ताओं में वर्णन आता है कि श्रीमहाप्रभुजी एवं एवं श्रीगुसांईजी कई बार श्रीद्वारका एवं जगन्नाथपुरी श्रीरणछोडजी एवं श्रीजगन्नाथजी के दर्शन करने पधारते थे। श्रीवल्लभाचार्यजी के बद्रीधाम यात्रा एवं बद्रीनाथजी के दर्शन एवं महर्षि वेदव्यास से वार्ता करना हम सभी जानते है।

मैं यहां श्रीगुसांईजी की पीताम्बर दास के लिये उठाई ब्रज यात्रा का भी जिक्र करना चाहता हूं। इस वार्ता के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्याश्रय का अर्थ हम वर्तमान में जो मानते हैं वह आप श्री का कभी नहीं था। हम सब जानते हैं कि काशी विश्वनाथ जन्माष्टमी पर दो दिन के लिये वैष्णव के घर दर्शन करने पधारते थे एवं वैष्णव उनके लिए प्रसाद लेकर विश्वनाथ मन्दिर में आते थे। 84 वैष्णवों की वार्ता एवं 252 वैष्णवों की वार्ता में कई ऐसे प्रसंग आते हैं। जिनसे अन्याश्रय का अर्थ श्रीमहाप्रभुजी एवं श्रीगुसांईजी द्वारा दिया गया समझ सकते हैं।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

कृष्ण कुण्ड पर राधे राधे......

पं. विष्णुदत्त पुरोहित

आचार्य श्रीवल्लभ भक्ति सम्प्रदाय के आचार्यो में अन्तिम प्रमुख आचार्य है। इनका व्यक्तित्व व कृतित्व ऐसे आचार्य के रूप में हमारे सामने आता है जो भक्ति की शास्त्रीय मर्यादा से भली भांति परिचित है।

जब भारत की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दशा बड़ी शोचनीय थी ऐसे समय में आपका भूतल पर अवतीर्ण होना अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है एवं युगान्तकारी रहा है। इनके जीवन के प्रत्येक पक्ष का इनके वंशजों व अनुयायियों द्वारा विशद् वर्णन होने से बड़ा स्पष्ट रूप प्रकट है।

प्राकट्य से नित्य लीलास्थ होने तक के सभी कर्म विचित्र एवं चमत्कारी रहे है।

म्लेच्छा क्रान्तेषु देशेषु..........आदि वाक्य से विपरीत परिस्थितियों में कृष्ण भक्ति की सरस धारा को बिना चमत्कार के जय जयकार में नहीं बदला जा सकता इसी भावना से धर्म स्थापना में आपने कतिपय स्थलों पर अपने अलौकिक चमत्कार दिखा कर न सिर्फ सनातन धर्मियों में विश्वास बनाये रखा वरन् विधर्मी शासकों व उनके हाकिमों के मध्य भी ब्रह्म के अस्तित्व को प्रकृति के स्पन्दन से प्रकट किया है।

समय समय पर किये परिक्षणों में आपने एक बार बहुलावन भ्रमण के समय भी इस प्रकार का चमत्कार किया जो वर्णन योग्य है।

आप उक्त वन में कृष्ण कुण्ड पर वट वृक्ष के नीचे विराज रहे थे तब वैष्णवों एवं ब्राह्मणों ने उनके दर्शनों का लाभ लिया एवं निवेदन किया कि कृपानाथ! हमारे पर कृपा करिये एवं इस गांव का मुस्लिम हाकिम हमको परेशान करता है उससे बचाईये। इस बहुला गाय की मूर्ति की पूजा करने से रोकता है कि यह पत्थर की गाय कोई चारा दाना नहीं खाती फिर मूर्ति पूजा क्यों करते हो। महाप्रभुजी ने सभी भक्तों को सांत्वना देते हुए कहा कि विधर्मी हाकिम की यही समस्या है कि यह पाषाण गाय की प्रतिमा क्यों पुजाती हैं। चलती फिरती व चरती नहीं हैं फिर भी उतनी ही पूजनीय क्यों है? उसका कहना है कि यदि यह गाय मेरे सामने घास खावें तभी में इसको चमत्कारी मानूगां।

यह सुन कर श्रीमहाप्रभुजी ने भक्तों को सान्त्वना देते हुए कहा, भक्तों इतनी ही बात है कि उस हाकिम को बहुला गऊ माता को चारा खाते देखना है तो चिन्ता न करों और हाकिम को कह दो कि तुम्हारे सामने यह पाषाण की बहुला गाय चारा खायेगी।

मुस्लिम हाकिम को सूचना मिलने पर उसने गांवों में ढ़िढोरा पिटवा कर कई गांवों के लोगों को एकत्र किया और स्वयं के लाव लश्कर के साथ कृष्ण कुण्ड पर आया। आचार्य चरण अपने शिष्य समुदाय के साथ पधारें।

हाकिम ने आवाज देकर कहा कि इस पत्थर की गाय को घास डालो ताकि हम देख सके कि यह घास खा रही है। वहां कुछ ब्राह्मणों ने धूजते हाथो से हरा घास व एक तगारी में धान्य के बांटे का भोग लगाया और बहुला गाय के मुख के सम्मुख रखा तब आचार्य चरण ने आज्ञा करी कि यह चारा बांटा गऊ माता के मुख के सम्मुख मत रखो वरन् उनके पिछे थोड़ी दूर रखों।

ब्राह्मणों ने तदनुसार आज्ञा का पालन किया। सभी एक टक यह देख रहे थे। हाकिम व उसके विधर्मी कारकून हँस रहे थे परन्तु यह क्या? बहुला गाय की प्रतिमा सजीव होकर जिस ओर घास बाटा था मुँह फैर कर प्रेम से खाने लगी। वहा मौजूद समाज गिरीराजधरन की जय के जयकारों से गगन मंडल गूंजायमान करने लग गया। हाकिम भी वाह! तोबाह! करता हुआ महाप्रभुजी को सलाम करता हुआ चला गया।

हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता.................................।। जय श्रीकृष्ण ।।

महाप्रभुजी की अमर कहानी

—जयन्त गांधी (कुसुमायुध) जूनागढ़

सूनो सूनो सब पुष्टिजन, श्रीवल्लभ प्रभु की अमर कहानी।
भूतल पर जो प्रगटे गुरुजी, 'कृष्ण—कमल—मुख' ज्ञानी।
सूनो सूनो सब पुष्टिजन, श्रीवल्लभ प्रभु की अमर कहानी। (टेक)

गीता में जो वचन दिया है, सबको कृष्ण प्रभु ने,
जब जब होगी धर्म की ग्लानि, तब अवतार धरूं मैं,
साधुजनों का रक्षण करने, धर्मकी ज्योत जलाने,
हर युग में अवतार मैं लेता, निश्चय मेरा यही है।.........सूनो सूनो.....।।१।।

कलियुग में जब म्लेच्छ—राज्य में हुई धर्म की ग्लानि,
कइ सितम तब हुए हिन्दु पर, पीड़ित भये नर नारी,
कृष्ण कमल मुख प्रगट भये तब पुनित श्री वल्लभ प्रभुजी,
दैवी जीवको शरन में ले, रक्षा की हिन्दु धर्म की।........सूनो सूनो....।।२।।

संवत पंद्रह सो पैंतीस की, जब चैत्र कृष्ण एकादशी थी,
चंपारण्य शुभस्थान में प्रगटे, अग्निकुण्ड ने रक्षा की थी,
लक्ष्मण भट्टजी तात के कुल में, इलम्मागारु माता कुख से।
दिव्य पुनित पादक बालक की, शुरु हुई यह अमर जीवनी।........सूनो सूनो....।।३।।

अल्प उम्र में श्रीवल्लभ ने, शास्त्र सकल पढ़ लिये,
बेद पुरान, उपनिषद, गीता, भागवत पुनित सभी थे,
सब शास्त्रों का सार स्वरुप फिर 'शुद्धाद्वैत' सिद्धांत रचाया,
शास्त्रार्थो में मायावादी पण्डित सबको हराया।........सूनो सूनो....।।४।।

विजयनगर में श्रीवल्लभ का, 'कनकाभिषेक' हुआ था।
'पुष्टिमार्ग' सा कृष्ण भक्तिका, अनूठा मार्ग रचाया।
निशदिन कृष्णचरण में चित रखने की सीख बताई,
'गृह—सेवा' की सहज सरल शुभ सेवा रीति जताई।........सूनो सूनो....।।५।।

खुल्ले श्रीचरनों से प्रभु ने, भारत यात्रा पूरी की थी,
निज भक्तों के संग पुनित, तिन पदयात्रा शुभ की थी,
चौराशी शुचि तीर्थ स्थान में भागवत कथा कही थी,
'महाप्रभुजी–बैठकजी' के स्थान सदा अब है चौरासी।........सूनो सूनो....।।६।।
चौराशी दैवीजीव को फिर, शरन हरि के सौंपे,
'गद्यमंत्र' पावक से उनके, ब्रह्म–संबंध कराये,
'श्री कृष्णः शरणं मम' जैसा, महामंत्र भी दीया,
सेवा–सत्संग–स्मरण त्रिवेणी पुष्टिजनों की बनाई।........सूनो सूनो....।।७।।
गिरिकंदरा से 'श्री–व्रज' में जब, गोवर्धनधर प्रगटे,
'सेवाधर्म चलाओ वल्लभ', आज्ञा प्रभु वे करते,
पूरनमल क्षत्रिय से गिरि पर, मंदिर वे बनवाते,
अष्टदर्शनों श्रीनाथजी के, हरदिन नये हैं होते।।........सूनो सूनो....।।८।।
श्रीहरि आज्ञासे श्रीवल्लभ, गृहस्थाश्रयी बनते,
'महालक्ष्मी' नामक कन्या से, मंगल लग्न रचाते,
'गोपीनाथ' और 'विठ्ठलवर' दो, पुत्ररत्न फिर प्रगटे
पुष्टिमार्ग को परम प्रसारा इन दोनों ने मिलके।........सूनो सूनो....।।६।।
'सुबोधिनीजी' टिका–ग्रंथ में, भागवत्–गूढार्थ प्रगटाये,
'षोडश ग्रंथ' पुनित से प्रभु ने, पुष्टिसिद्धांत समजाये,
हिन्दु धर्म की ज्योत सदा, उज्जवल फिर वे प्रभु बनाते,
चारों वर्ण और स्त्री शुद्रों को प्रभु भक्ति में स्थान दीया है।........सूनो सूनो....।।१०।।
पूरा हुआ 'अवतार–कार्य' तब 'संयासी' प्रभु वनते,
संवत पंद्रहसो सत्तासी की अषाढ़ द्वितीया शुक्ल तिथि में,
काशी तीर्थ गंगा सरिता में, हनुमान घाट समीप वे,
गंगाजल में लेके समाधि तेज स्वरुप गोलोक पधारे।........सूनो सूनो....।।११।।
'सर्वोत्तम' श्रीवल्लभ प्रभु की, पावक अमर कहानी,
कवि कुसुमायुध ने प्रेम से, गीत रचकर यह गाई,
पुष्टिमार्ग की प्रेम सभर यह 'कृष्ण–भक्ति' के दाता,
श्रीमद् वल्लभ प्रभु चरनों में अपना शिर झुकाया।........सूनो सूनो....।।१२।।
।। जय श्रीकृष्ण।।

आज बिरज में होली रे रसिया.........
ब्रज संस्कृति से उत्प्रेरित ठाकुरजी का होलिकोत्सव

—डॉ. गगन बिहारी दाधीच

वल्लभ सम्प्रदाय की प्रधानपीठ स्थित ठाकुरजी की हवेली में फागोत्सव की अनूठी परम्परा रही है तथा वर्ष भर के वैष्णव व्रतोत्सवों व मनोरथों में फागोत्सव की सेवाएं ऐसी हैं जब 40 दिवसीय फागोत्सव की अवधि में राजभोग झांकी के समय वैष्णव स्वरुपों को चौवा चंदन तथा गुलाल अबीर से फाग खिलाया जाता है और मुखियागण श्रीअंग पर चौवा चंदन की टिपकियाँ सुसज्जित कर धवल पिछवई खण्ड पर गुलाल अबीर को चुटकियों में भरकर उड़ती चिड़ियाओं को रुपांकित कर फाग का रंगारंग भाव मुखरित करते हैं।

शिवरात्रि से शुरु होकर फाग भाव की जो रंगारंग सेवाएं शुरु होती हैं, उनका सीधा सम्बन्ध ब्रज संस्कृति एवं पुष्टि सेवा के भाव रुपों के साथ जुडा रहा हैं। फाग की शृंगारिक पदावलियाँ हो या ब्रजवासी रसिया गायकों द्वारा गायी जाने वाली होरी की गार हो........ ब्रज का लीला भाव सर्वत्र मुखरित होता हैं। यही नहीं, फाग सेवाओं का यही वह समय होता है जब वैष्णव मंदिरों में उपंग वादन की सेवा गुंजारित होती हैं जो शिवरात्रि से डोलोत्सव तक अनवरत चलती हैं। फाग सेवा का भाव होने के कारण इस अवधि में वैष्णव स्वरुपों को धवल रंगत के ही अंग वस्त्र तथा पिछवई खण्ड सुसज्जित होता है जिससे गुलाल अबीर तथा चौवा—चंदन की रंगत रुपांकित होती रहती हैं।

<u>रसिया में मुखरित फागभाव</u>— फाग माह में ठाकुरजी अपनी सखियों के संग फाग खेलने का आनन्द लेते हैं तथा होली के शृंगारित रसिया सुनकर ही गोवर्धनधारी राजभोग अरोगते हैं। निःसंदेह, रसिया बिना ठाकुरजी के फाग की रंगत बन ही नहीं सकती। ब्रजवासी रसिया गायकों का कहना हैं कि फाग सेवा में ठाकुरजी को दो तरह के रसिया

सुनाए जाते हैं। राजभोग झांकी के समय रतनचौक में गायक दल एकत्रित होकर समूह में बैठता है तथा बैठे–बैठे ही ठप की थाप के संग बैठ रसिया गाते है। इसके बाद रसिया दल ठाकुरजी के सम्मुख डोल तिबारी में समूह में खडे हो जाते है और ढ़ोल, चंग तथा झांझ वादन की संगत के साथ ठाकुरजी को खडे रसिया सुनाए जाते है।

फाग सेवा की श्रृंगारिकता के साथ यह भाव भी जुड़ा रहा है कि कामदेव मदन हैं तो ठाकुरजी मदन मोहन..............

ठाकुरजी के काम को जगाने के लिए ही फाग सेवा की अवधि में फूलों के कुंज सजते है.........इत्र फुलेल की बरसात होती है........ कामना जगाने के लिए ही सुवासित चौवा–चंदन के सेवा के साथ रसिया गान होता है। इस भावपूर्ण सेवा में प्रेम का समर्पण तथा सखा भाव ही श्रृंगारिक सेवाओं का आधार होता हैं।

बादशाह की सवारी– फागोत्सव के साथ बादशाह की सवारी जैसा रौचक प्रसंग भी जुड़ा रहा हैं। मुगल शासकों ने हिन्दुओं पर जो अत्याचार किये, उनके पश्चाताप के भाव से ही धुलेण्डी के दिन ठाठ बाट से बादशाह की सवारी निकलती हैं। लवाजमें के साथ बादशाह गली से शुरु होकर सवारी मंदिर की परिक्रमा कर सीधे गोवर्धन पूजा चौक पहुंचती है तथा परम्परानुसार बादशाह अपनी लम्बी दाढ़ी से नवधा भक्ति से बनी सूरजपोल की नो सीढ़ियों को बुहारता है और ठाकुरजी को नमन कर द्वार से बाहर निकलता हैं। बाहर आने पर बादशाह को नगर वासी तथा श्रद्धालुगण खूब गालियाँ सुनाते हैं। वैष्णव मंदिरों में इसी दिन डोल बंधता है जिसे सुवासित जल से भरकर पत्र–पुष्प सजाए जाते हैं। फाग की छैली सेवा होने के कारण इस दिन मंदिर में खूब गुलाल अबीर उड़ता है और डोल की सेवा के साथ ही वैष्णव मंदिरों में फाग की सेवाएँ पूर्ण हो जाती है।

।। जय श्री कृष्ण ।।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

पुष्टिमार्ग के वैष्णव वृन्द को महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत एवं पुष्टिमार्गीय सेवा–पद्धति से परिचित कराने के साथ ही सेव्य प्रभु श्रीनाथजी जो श्रीकृष्ण के साक्षात् बालस्वरुप है, के प्रति स्नेह, सेवा एवं समर्पण भाव की अभिवृद्धि के लिए मन्दिर मण्डल विगत दस वर्षों से **''पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका''** का निरन्तर प्रकाशन करता आ रहा है। वैष्णवों से आग्रह है कि पुष्टिमार्ग–पत्रिका के सदस्य अवश्य बनें और पुष्टिभाव प्रसारार्थ अन्य लोगों को भी अवश्य सदस्य बनावें। इस हेतु कृपया सदस्यता फार्म भर कर शीघ्र भिजावें।

सदस्यता फार्म

पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका

प्रकाशक :– मुख्य निष्पादन अधिकारी नाथद्वारा मन्दिर मण्डल नाथद्वारा, पिन कोड– 313301

फोन : 02953–232482, फेक्स : 02953–232482, E-mail <shrinathdwar@bsnl.in>

ICICI Bank A/C No. 004501014021 बड़ौदा बैंक A/C No. 10300100000318

www.shreenathjee.com www. nathdwara. in

सदस्यता शुल्क	वार्षिक	पांच वर्षिय	आजीवन
भारत में	Rs. 60	Rs. 300	Rs. 800
विदेशों में	US$ 12	US$ 60	US$ 160

मुख्य निष्पादन अधिकारी
मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा, पिन– 313301

मैं/मैसर्स पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका की वार्षिक/पांच वर्षिय/आजीवन सदस्यता माह——————वर्ष—————— से लेना चाहता/चाहती हूं। इस हेतु राशि—————————— का एम. ओ./एम. टी./डी. डी. नं.———— (नाथद्वारा में देय) संलग्न कर प्रेषित है। (कृपया एम. ओ./एम. टी./डी. डी./या ICICI /BOB बैंक खाते में जमा कराई राशि संग ''पुष्टिमार्ग पत्रिका हेतु'' का उल्लेख कर स्लिप भिजावें)।

(डी.डी., बैंक चैक आदि मुख्य निष्पादन अधिकारी, मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा के नाम बनवावें।)

आवेदक के हस्ताक्षर

आवेदक का नाम——————————————

पता——————————————

जिला—————— राज्य—————— पिन कोड————

फोन—————— ई–मेल——————

पत्र, आलेख एवं सदस्यता भिजाने हेतु पता–
संपादक :–पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका,
(दयाशंकर पालीवाल, पुष्टि प्रसार अधिकारी, 09829755702)
लोधाघाटी, नाथद्वारा पिन–313301, जिला– राजसमन्द, (राज.)

Shrinathji Temple Board, Nathdwara has been publishing "Pushti Marg" Quarterly Magazine for last ten years to propagate and expand the, philosophical Doctrine of Shudhadwet and system of Pushti Marg sect propounded by Maha prabhu Shrimad Vallabhacharyaji.

All the devoted Vaishnavas are beseeched to be the members of and serve the Pushti Marg by making others to do the same.

MEMBER SHIP FORM

PUSTIMARG QUARTERLY MAGAZINE

Publisher :- Chief Executive Officer, Temple Board, Nathdwara-Pin-313301

Phone : 02953-232482, Fax-02953-232482, E-mail <shrinathdwar@bsnl.in>

ICICI Bank A/C No. 004501014021 — Bank of Baroda A/C No. 10300100000318

www.shreenathjee.com — www. nathdwara. in

Member ship Fee	Annual	Five Years	Life time
India	Rs. 60	Rs. 300	Rs. 800
Abroad	US$ 12	US$ 60	US$ 160

Chief Executive Officer

Temple Board Nathdwara-313301

I/Messers want to be the member of Pushti Marg Quarterly Magazine for one/Five Years/Life time from the month...............year. For this M.O./M.T./D.D. (Payable at Nathdwara) No. .... is enclosed here with. (please endorse the referance "For Pushtimarg Patrika" while sending M.O./M.T./D.D./ or ICICI/BOB Bank slip.)

(D.D./Bank Order Should be on the name of C.E.O. Temple Board. Nathdwara)

Signature of the Applicant

Name of the Applicant..

Adress..

....

District.............................State......................Pin.............

Phone...............................E-mail......................................

Adress for Sending letters, Articals and Member ship:-

EDITOR :- Pushti Marg Quarterly Magazine
(D. S. Paliwal, Pusti Extension Officer, 09829755702)
Lodha Ghati, NATHDWARA, Dist. Rajsamand, Rajasthan. Pin-313301